मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र

BE MAN
मनुष्य बनो

सम्पादक :
डा० परस राम अग्रवाल

| वर्ष 12 | बृहस्पतिवार 10 अक्टूबर 1985 | संख्या 6 |

सत्संग हजूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज

20 जनवरी 1930

शब्द

१. भरोसा तेरा है तेरी आश मन में, लगा रहता हूँ तेरे सुमिरन भजन में।
२. यही है जतन और यही काम मेरा, जपा करता हूँ रात दिन नाम तेरा।
३. तेरी मौज में रह के निश-दिन सुखी हूँ, नहीं भय न चिन्ता न जग से दुःखी हूँ।
४. खुली आँख से तेरा दर्शन जो पाया, मिटे सहज में मान मद मोह माया।
५. न योगी न साधू न ज्ञानी बना मैं, न भोगी असाधू न मानी बना मैं।
६. जो था पहले अब भी वही रूप मेरा, न व्यापे मुझे काल का हेरा फेरा।
७. न जागा न सोया न सुषुप्ती में आया, न आशा निराशा के भय ने सताया।
८. नहीं ब्रह्म माया का है द्वंद मुझ को, न उलझा सका कर्म का फंद मुझको।

९. सहज रूप है और सहज कर्म बानी, सहज में सहज की सहज हो निशानी।

१०. सहस दल अनेक और त्रिकुटी की त्रिपुटी, दशा द्वैत की सुन्न में भी न प्रगटी।

११. महासुन्न अद्वैत का भाव छूटा, भँवर में नहीं काल माया ने लूटा।

१२. अलख हूँ अगम हूँ अनामी बना हूँ, कहूँ कैसे कैसा कहाँ और क्या हूँ।
गुरु राधास्वामी ने आकर चिताया, मेरा रूप मुझको सहज में लखाया।

शब्द की व्याख्या—

(१) भरोसा कहते हैं आधार को, सहारे को। इस शब्द में अपने रूप को मुखातिब (सम्बोधित) किया गया। जिसके भरोसे, जिसके सहारे और जिसके आधार पर यह सारा ब्रह्माण्ड निर्भर है, और अठखेलियाँ खेला करता है, यह अपना निज स्वरूप ही है। यह न कभी बदलता है, न मिटता है, न हिलता है, न डलता है। और कहने वाला कौन है? इस रूप का अभिमानी मन जो अपने आपको रूप के अनुरूप बना कर उसी के ज़ोम में दून की हाँक रहा है। जिस तरह लोहा आग से मिलकर आग-अभिमानी होकर अपने आपको आग समझता है, और अपनी ज़ात को आग ख्याल करता है, और उससे अपने आपको अलग नहीं समझता, इसी तरह जब मन का घाट बदल जाता है, और यह रूप के घाट पर बैठता है, उस वक्त उसका अभिमान करता हुआ उसकी विशेषताओं को अपने अन्दर घटाने लगता है। बहरहाल, उस शीशे से तुलना है जो गुलाब के फूल के पास रखा हुआ, फूल के रंग-रूप को धारण कर लेता है, और उसी की तरह उसमें भी दमक आ जाती है। बिलकुल इसी तरह रूप का

अभिमानी मन जिस वक्त अपनी कलाबाजियों को छोड़कर आत्मा के सन्निकट (क़रीब) हो जाता है, उसके तमाम असरात (प्रभाव) इसमें भासने लगते हैं, और इसी भासने का नाम सुमिरन, ध्यान और भजन है। सुमिरन-याद करना, ध्यान-रूप बनाना, और भजन—उसमें महब और विलीन हो जाना।

जब मन ज़ात का हमज़ात हो जाता है, एक रूप हो जाता है, तब यह दशा होती है। और वह ज़ात की सभी विशेषताओं को ग्रहण करता हुआ, उनको अपने में विश्वास करने लग जाता है। फिर उस समय उसे बन्धन या मुक्ति की चिन्ता नहीं सताती। इसलिये मन कहता है :—

'भरोसा तेरा है तेरी आस मन में ;
लगा रहता हूँ तेरे सुमिरन-भजन में।'

(२) ज़ात के सहारे रहना, ज़ात से अलग न होना, ज़ात ही का दम भरना, यही इस मन की विशेषता बन जाती है और वह उसी के नाम को लेकर नामी हो जाता है। यह पहली और दूसरी कड़ी की व्याख्या है।

(३) ज़ात के सहारे, ज़ात के मौज में इस मन को सुख और शान्ति प्राप्त होती है। फिर जगत् के नियमों और दुःखों का कोई असर या प्रभाव उस पर नहीं होता। दुनिया बदलती है, बदला करे, जगत् के कारोबार में झटके लगते हैं तो लगते रहें। लेकिन जिस मन की बैठक बदल गई है और जो निज स्वरूप की बैठक में बैठ गया है, वह अपने आपको उनकी पकड़ और प्रभावों से मुक्त और सुरक्षित पाता है।

इस बात को समझना सरल भी है और कठिन भी है। जिसको मन की हालतों का अनुभव है, उनके लिये इसका समझना सरल है और जिसे मन की दशाओं का अनुभव नहीं

है, उसके लिये समझना कठिन है। तुम देखते हो जिस समय किसी पर वहम का भूत सवार हो जाता है, वह दिन-रात उसी की रट लगाता रहता है। लाख उसको समझाओ वह नहीं मानता। इसका कारण केवल यह है कि मन का घाट बदला होता है।

पूरब में जब कोई बावला या पागल आदमी दिखाई देता है तो लोग कहते हैं—इसका मन किसी और कोठे में चला गया। और जिस कोठे में मन चला गया, उसकी हरकतें वह किया करता है। किसी-किसी ड्रामा या थियेटर के किसी विशेष ऐक्टर का खेल दिखाते हुए दर्शक उस ऐक्टर के सारे प्रभावों को मानसिक रूप से अपने अन्दर ग्रहण कर लेते हैं, और सारी ज़िन्दगी वही बने रहते हैं। जैसे कोई किसी बादशाह का नाटक अगर बार-बार देखता है तो अपने आपको बादशाह समझने लगता है और फिर उसका पूरा-पूरा पाई अदा कर देता है।

'तेरे मौज में रह के निश दिन सुखी हूँ,
नहीं भय न चिन्ता न जग से दुःखी हूँ।'

यह तीसरी कड़ी की व्याख्या है।

(४) जिस वक्त यह मन खुली आँख से साक्षात् रूप में गुरु का दर्शन पा लेता है, और उसमें समता आ जाती है, और समाहित हो कर सहज समाधि का अभ्यास हो जाता है, उस वक्त उसके अन्दर से मान-मद, मोह-माया के सारे संस्कार अपने आप चले जाते हैं।

गुरु के सम्बन्ध में लोगों का विचार मनुष्य की दृष्टि से होता है। वह गुरु के उदाहरण और व्यवहार से लाभ न उठाते हुए, गुरु को परमतत्त्व न मानते हुए, मनुष्य समझ लेते हैं। इसलिये उनको गुरु के साथ रहते हुए भी परमतत्त्व का बोध नहीं होता। परमार्थ का मतलब यह है कि जिस

तरह मालिक या परमतत्त्व निर्लेप है, वह कोई काम नहीं करता और सारे काम उसी के सहारे होते हैं। इसी तरह से गुरु का असली स्वरूप भी निर्लेप है। वह काम करता हुआ बेकाम, और बोलता हुआ अबोला होता है। जब यह मर्म या राज़ समझ में आ जाता है, उस वक्त गुरु की महिमा का ज्ञान होने लगता है। और अभ्यास करते-करते वही निष्काम भाव शिष्य में भी आ जाता है। जब वह इसमें पूरा उतर जाता है फिर परमतत्त्व ज़ात मालिक के सिवा किसी किस्म का भ्रम या सन्देह नहीं उठता।

'खुली आँख से तेरा दर्शन जो पाया,
सहज में मिटे मान मद मोह माया।'

यह चौथी कड़ी की व्याख्या है।

(५) इस हालत के पैदा करने के लिये बनने-बनाने की ज़रूरत नहीं है। क्योंकि जो बनता है वह बिगड़ता भी है। कोई योगी, साधु या ज्ञानी बना भी तो क्या बना! क्योंकि यह सब कृत्रिम और बनावटी अवस्थाएँ हैं, और बनावट या कृत्रिमता अस्थायी और नाशवान होती है। इसमें परिवर्तन होता रहता है। और कोई भोगी, मानी या असाधु बना तो क्या बना! यह बनना भी हमेशा के लिये नहीं होता, इनका भी अन्त हो जाता है।

ज़ात निश्चल है, अखंड है, अद्वैत है। इसमें बनने-बिगड़ने की सम्भावना नहीं है। न इसमें कोई घटाव-बढ़ाव कर सकता है। वह जैसा है वैसा ही रहता है। इसलिये जो लोग सच्चाई-पसन्द हैं, वह भेद को जान लेते हैं, वह काम करते हुए कामरहित और निष्काम होते हुए कर्मशील होते हैं क्योंकि उनका इष्ट ज़ात या निजस्वरूप होता है। और गुरु को वे इष्ट या परमतत्त्व स्वरूप मानते-जानते हैं। और इष्ट या स्वरूप को गुरुरूप स्वीकार करते हैं। केवल इसी

विचार को हृदय में धारण करने की ज़रूरत है। और [redacted] किया-कराया जाता है। अन्त में यही हालत आ जाती है। तुम हमेशा इस आधारभूत सत्य को याद रखो।

'हरि सों लागा रहु रे भाई,
तेरी बनत-बनत बन जाई।'
'न योगी न साधु न ज्ञानी बना मैं,
न भोगी असाधु न मानी बना मैं।'

पाँचवीं कड़ी की व्याख्या हो गई।

(६) जितने परिवर्तन होते हैं, वह सब काल के देश में होते हैं। जहाँ काल का राज्य नहीं है, वहाँ परिवर्तन का नाम-निशान भी नहीं है। जिसके दिल में वक्त और वक्त की ज़रूरत का विचार हावी रहता है, उसमें सदा परिवर्तन होता रहेगा। और जो काल के विचार को दिल में आने नहीं देता, उसके लिये परिवर्तन या स्थायित्व कोई अर्थ नहीं रखते।

बचपन, जवानी, बुढ़ापा, यह सब काल की हेरा-फेरी की हालतें हैं जिनमें परिवर्तन होते रहते हैं। मगर यह तीनों हालतें जिस "मैं" के सहारे बदलती रहती हैं, वह "मैं" ज्यों का त्यों रहता है। वह "मैं" न लड़का है, न जवान है, न बूढ़ा है। वह न कभी जन्मा, न बूढ़ा हुआ, न मरा, न मौत के निकट आया। जीवन और मरण के खेल उसी "मैं" के सहारे हुआ करते हैं। जो पहले था, वही अन्त में भी है और काल के हेरे-फेरे का सिलसिला उसको नहीं छूता। ये परिवर्तन उसमें होते हैं जो काल की लपेट में पड़ा हुआ है। जब आँख खोलता है तब जागता है, जब बन्द करता है तो सोता है, जब महवीयत की हालत में जाता है तब सुषुप्ति का आनन्द लेता है। यह तीनों हालतें माज़ी, हाल और इस्तकबाल, भूत-भविष्य और वर्तमान काल की विशेषताएँ

है। और मन इसका शिकार बना हुआ नित नये स्वाँग भरा करता है। जिसने अपने दिल से काल का विचार हटा दिया, और दिल में दयाल को जगह दी, उसकी दशा कुछ और ही हो जाती है। यहाँ दयाल का मतलब ज़ात से है।

'जो था पहले अब भी वही रूप मेरा,
न व्यापे मुझे काल का हेरा-फेरा।'

यह छठवीं कड़ी की व्याख्या हुई।

(७) कौन जागता है? कौन सोता है? और कौन सुषुप्ति में आता है? यह ज्वार-भाटे परमतत्त्व (ज़ात) के समुद्र में उठते रहते हैं। लहरें तमव्वज में हैं, यह जाग्रत अवस्था है। लहरें ठहर गईं, यह स्वप्न अवस्था है। लहरें सागर की गोद में विलीन हो गईं, यह सुषुप्ति की अवस्था है। अगर सागर में लहरें उठती हैं, उठा करें। सागर को लहरों के उठने-बठने से क्या हानि हो सकती है? ज्वार-भाटे आते हैं तो आते रहें। सागर क्या-२ बिगाड़ सकते हैं? उसे न किसी बात की उम्मीद है, न नाउम्मीदी। क्योंकि दोनों काल के दायरे में हैं जिनका सम्बन्ध मन से है।

मन का घाट बदल गया, फिर क्या भय? परमतत्त्व (ज़ात ही ज़ात) है। काल (सिफ़ात) खत्म है।

'न जागा न सोया न सुषुप्ती में आया,
न आशा निराशा के भय ने सताया।'

सातवीं कड़ी की व्याख्या हो चुकी।

(८) जहाँ ज़ात का विचार है, वहाँ सिफ़ात का भी विचार है। मान लो अगर तुम ब्रह्म को ज़ात मानते हो, तो ज़ात के कहने से ज़ातियत का भाव अपने आप उसके अन्दर पैदा होगा, और इस ज़ातियत के भाव का नाम माया है। जब एक है तो दूसरा क्यों न होगा। उस बेचारे ने क्या कसूर किया? इसलिये जहाँ ब्रह्म का विचार है वहाँ माया

ज़रूर रहेगी। यह दोनों तत्त्व हैं। प्रकाश का साथी छाया है इसी तरह ब्रह्म के साथ माया है। और जहाँ दो रहते हैं वहाँ ही खटपट होती है। जब ब्रह्म और माया दोनों होंगे तो फिर कर्म का सिलसिला अपने आप ही चल निकलता है। और नतीजा कैदोबन्द और मर्यादा होती है। लेकिन जहाँ न एक है, न दो है, वहाँ कैसी मुक्ति और कैसा बन्धन ? क्योंकि यह दोनों :—

'नहीं ब्रह्म-माया का है द्वंद मुझको,
न उलझा सका कर्म का फंद मुझको।

यह आठवीं कड़ी की व्याख्या है।

(९) जो चीज़ है सहज है। न कहीं सख्ती है न कहीं नर्मी है। न कहीं खींच है, न कहीं तान है। जो है, वह है। एक परमतत्त्व है जो कभी खंडित नहीं होता न बँटता है। इसलिये सीमित या असीम का शब्द इस्तेमाल करना भी अनुचित है। हाँ समझाने-बुझाने के लिये सहज शब्द का प्रयोग किया गया और निज स्वरूप अभिमानी मन इस प्रकार कह उठा—

'सहज रूप है और सहज कर्म बानी,
सहज में सहज की सहज हो निशानी।'

नवीं कड़ी की व्याख्या हो गई।

(१०-११) सहस्र दल कमल बहुवाद जगत् (आलम-ए-कसरत) है। त्रिकुटी त्रैतवाद जगत् (आलम-ए-तसलीस) है। संकल्प वाला शून्य, जिसमें सविकल्प समाधि लगती है, द्वैतवाद की रूह अपने अन्दर रखता है। महा-शून्य निर्विकल्प शून्य समाधि का स्थान है। जहाँ जिसमें संकल्प-विकल्प नहीं उठता उसे अद्वैत पद कहा जाता है। इसके परे भँवर गुफा में माया और काल का विलास स्थान है। इनमें से किसी हालत का असर मेरे ऊपर नहीं आता। न मैं अद्वैत बना, न द्वैत, न कालवादी बना न माया-वादी बना।

यह दसवीं और ग्यारहवीं कड़ियों की व्याख्या है।

(१२) यहाँ आकर पता लगता है कि सच्चाई क्या है। मैं अलख हूँ, क्योंकि बुद्धि और मन मुझे पहचान नहीं सकते। मैं अगम हूँ, क्योंकि मन और बुद्धि की पहुंच मुझ तक नहीं है। मैं अनामी हूँ, मेरा कोई नाम नहीं है। मैं अरूप हूँ, मेरा कोई रूप नहीं है। अगर कोई व्यक्ति बता सकता है कि वह क्या है ? कैसा है ? कैसे है? और कहाँ है ? तो फिर वह बताने का साहस क्यों नहीं करता ! उसका भी हौसला देखना चाहिये।

इस बात के समझने के लिए और किसी जगह जाने की ज़रूरत नहीं है। गुरु का उपदेश लेकर ज़रा अपने अन्दर विचार करो और तुम्हारा अनुभव खुद तुम को विश्वास दिलायेगा कि असल में तुम ऐसे ही हो। तुम कहाँ पहचाने जाते हो ? और क्या चीज़ पहचानी जाती है ? कहाँ लखे जाते हो ? और कौन लखता है ? जाग्रत अवस्था में केवल शरीर जाना जाता है और जानने वाली इन्द्रियाँ हैं। क्या तुम शरीर हो ? नहीं। क्योंकि स्वप्नावस्था में जाने पर यह शरीर तुम से अलग हो जाता है। स्वप्न में भी लखा और पहचाना जाता है, लेकिन यहाँ मन लखता और पहचानता है। और किसे पहचानता है ? सिर्फ शरीर को। मेरी ज़ात (स्वरूप) को न इन्द्रियों ने देखा और न मन ने उसका विचार किया। जब सुषुप्ति की अवस्था है उस समय क्या लखा गया ? कुछ भी नहीं। क्या नाम और रूप है ? कुछ भी नहीं। क्या जानना-पहचानना है ? कुछ भी नहीं। इससे स्पष्ट पता चल गया कि मेरी हस्ती हाँ और नहीं दोनों दशाओं से अलग है। न मैं हाँ हूँ, न नहीं हूँ। हाँ और नहीं, अस्बात और नफ़ी, सत् और असत् के सारे खेल मेरे ही सहारे हुआ करते हैं। और नाहीं मैं इन सब से न्यारा

और विलकुल अलग हूँ। मुझको न कोई जान सकता है, न पहचान सकता है। क्योंकि जानने और पहचानने का सवाल मेरे साथ बिलकुल निरर्थक है।

'अलख हूँ अगम हूँ अनामी बना हूँ,
कहूँ कैसे कैसा ? कहाँ ? और क्या हूँ ?'

यह बारहवीं कड़ी की व्याख्या है।

(१३) सत् पुरुष राधास्वामी दयाल प्रकट हुए और सहज-सहज में किंचित् सैन-बैन में केवल इशारे-इशारे में सरल सीधे शब्दों में बिना किसी खींचतान के, बिना किसी लगाव-लपेट और बनावट के मुझको समझा दिया कि—

"बेटे ! तेरा यह रूप है, और तू यह है, और तू ऐसा है।" और मुझे निज स्वरूप (ज़ात) का अनुभव इस तरह से प्राप्त हुआ, और अब बात की समझ आई कि मेरी हस्ती क्या है ! यह आत्माभिमानी मन की परख है। जिसका घाट बदला हुआ है, और आत्म सम्बन्ध तादात्म्य सम्बन्ध के जज़बे में यह सदा (शब्द) सुन रहा है :—

'गुरु राधास्वामी ने आ कर चिताया,
मेरा रूप मुझको सहज में लखाया।'

सत्संग हजूर परमदयाल
पं० फ़कीरचन्द जी महाराज
मानवता मन्दिर होशियारपुर
16 - 4 - 1973
भजन क्या है ?

मेरी बीती उमरिया भजन बिना।
पन्थ में आये बने पन्थाई, पूरी न डगरिया भजन बिना,
भक्ति का सौदा नहीं कीना, बन्द बजरिया भजन बिना।
मन हुआ टूक करेजा फाटे, माया की नजरिया भजन बिना।
अबहूं सोच समझ अज्ञानी, जा गुरु की सेजरिया भजन बिना।
राधास्वामी चरन की ओट पकड़ ले, नाम बिसरिया भजन बिना।

राधास्वामी ! आप लोगों को सत्संग नहीं कराता। अपने आप से पूछता हूँ कि तुझे क्या मिला ? तुमने क्या काम किया, क्या भजन किया ? यहाँ लिखा हुआ है कि पन्थ में आकर पन्थाई बन गये। नाम ले लिया मगर भजन नहीं किया। क्यों ?

मन हुआ टूक करेजा फाटे माया की नजरिया भजन बिना।

मेरा सारा जीवन बीत गया। मैंने हजूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज से बहुत प्रेम किया।

आखिर क्या साबित हुआ कि जो कुछ मैंने जीवन में किया या मैंने अपने अन्दर में जो नज़ारे देखे वो माया थी तथा मन का चक्कर था। वह भजन नहीं था। इसका प्रमाण केवल इस एक बात से मिला कि मेरा रूप लोगों के अन्दर प्रकट होता है और उनके कई प्रकार के काम कर जाता है मगर मैं नहीं होता। मेरे नाम से जितनी बातें हैं, जिनको लोग चमत्कार का नाम देते हैं अगर मैं इनको एकत्रित करने की आज्ञा दे दूं तो यह एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बन जाये लेकिन जब से मुझे इस बात का ज्ञान हुआ है कि मैं कहीं नहीं जाता तो मुझे विश्वास हो गया कि जो कुछ नज़ारे मैंने अपने अभ्यास में देखे या सूर्य, चाँद, सितारे और देवी-देवता देखे वह मेरे अपने ही मन की कल्पना थी। एक सच्चे मानव की हैसियत में मुझे यह विश्वास होना भी चाहिए।

हजूर दाता दयाल जी महाराज ने मुझे गुरु पदवी देकर मेरी आँखें खोल दीं और मुझ पर बहुत एहसान किया। भजन हमारे Self की वह अवस्था है जहाँ हम मन को छोड़ कर और सब रंग-रूप छोड़कर एक ऐसी हालत में चले जाते हैं जहाँ अपने आप के सिवाय और कुछ शेष नहीं रहता। सहस्रदल कमल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न और सोहंग तक मन का खेल है। भूर् भुवः स्वः महः जनः तपः तक यह सब मन का खेल है और अन्नमय कोश से आनन्दमय कोश तक यह भी मन का ही खेल है। क्योंकि आनन्द सदैव दो वस्तुओं के मेल से होगा। चूंकि आप लोगों की बदौलत मेरी समझ में यह बात आई है इसलिए मैं आप लोगों को अपना सच्चा सत्तगुरु मानता हूँ। आप लोग मनानन्द चाहते हो। आपको क्या कहूँ मैं भी कभी चाहता था मगर क्योंकि सच्चाई की तलाश थी अतः अब पता लग गया कि भजन क्या है। महवीयत (लीनता) या विसमाधि, एकाग्रता या अपने आप,

अपने आप में गुम हो जाना समाधि है। हजूर दाता दयाल जी महाराज का इस शब्द से क्या भाव है यह तो वही जानते होंगे। मैं अपना अनुभव बताता हूँ कि हमारे Self या हमारे अपने आप का, या हमारी चेतन शक्ति का शरीर, मन और ख़्यालात को भूल कर अपने चेतन स्वरूप में समा जाने का नाम भजन है मगर इस मंज़िल तक जाने की प्रत्येक व्यक्ति में शक्ति नहीं है। आप लोग आये हैं। क्या भजन के लिए आये हैं? मगर जब तक भजन में नहीं जाओगे यह संकल्प-विकल्प फुरते ही रहेंगे। यह संकल्प-विकल्प और फुरनाएँ क्या हैं? सुनने से या पढ़ने से या बाहरी प्रभाव से जो नक़्श हमारे दिमाग़ पर पड़ते हैं यह वो फुरनाएँ हैं और यह प्रत्येक जीव की प्रकृति के अनुसार फुरते है, चोर को चोरी के और भक्त को भक्ति के ख़्यालात आयेंगे। मुझे रेल, तार और मां-बाप अभी तक भी स्वप्न में आ जाते हैं क्योंकि मां-बाप ने मुझे पाला तथा पढ़ाया है और रेल तथा तार के महकमे में मैंने अपने पेट की ख़ातिर नौकरी की थी।

आप लोग आये हैं। मैं अपने आप से पूछता हूँ कि फ़कीरचन्द! तुमने यह मकड़ी का जाला क्यों बना लिया है? कोई मुझे अच्छा कहता है तथा कोई गाली भी देता होगा। यह मेरा कर्म-भोग है। छोटी आयु से मालिक को मिलने निकला था, रामायण का पाठ किया करता था वहाँ से संस्कार मिला था कि वह राम मानवीय चोले में आते हैं। मेरा भाग्य मुझे सन्तमत में ले आया। यहाँ मैंने सन्तों की वाणियाँ पढ़ीं। कबीर साहिब ने कहा है :—

साधो कर्त्ता कर्म से न्यारा।
आवे न जावे मरे नहीं जीवे, ताको करे विचारा।
राम के पिता जो दशरथ कहिये, दशरथ कौने जाया।

दशरथ पिता राम को दादा, कहो कहाँ ते आया।
राधा रुक्मिणी कृष्ण की रानी, कृष्ण दोऊ को मीरा।
सोलह सहस्र गोपी उन भोगी, वह भयो क म को कीड़ा।

अब आप सोचो कि जब ऐसी-२ वाणियाँ राम और कृष्ण के मानने वालों को सुनाई जायें तो वो किधर जायें। इन वणियों से सन्तों ने राम और कृष्ण से हमारा विश्वास तोड़ दिया तथा अपना एक नया ही मालिक बता दिया। इन वाणियों ने मेरे मन में हलचल मचा दी। मैं सोचता था कि मैं तो मालिक को मिलने निकला था कहाँ फँस गया। क्योंकि हजूर दाता दयाल जी महाराज पर मेरा पूर्ण विश्वास था तथा वह टूटता नहीं था इसलिए उस समय मैंने प्रण किया था कि सच्चा बनकर इस रास्ते पर चलूंगा और जो कुछ मेरा अनुभव होगा वह संसार को बता जाऊंगा।

अब मुझे जब यह मालूम हुआ कि मेरा रूप लोगों के अन्दर प्रकट होता है, स्वप्न तो दरकनार रहा जाग्रत में लोग मेरे रूप को बना लेते हैं तथा इससे कई प्रकार के काम करा लेते हैं लेकिन मैं नहीं होता तो मुझे विश्वास हो गया कि यह सब मन का खेल है। आज भी एक औरत आई। कहने लगी "महाराज जी मैं बीमार थी। आप को याद किया, आप आ गये। आप ने कहा कि चिन्ता मत करो तुम राजी हो जाओगी और अब मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ।" मालिक जब भी मिलेगा भजन से मिलेगा। शरीर और मन को भूल कर अपनी चेतना में चले जाने का नाम भजन है। शरीर को भूलने के सिए 'अजपाजाप' और मन को छोड़ने के लिए 'नाम' का सुमिरन है। तुम लोग नाम के ऊपर झगड़ा करते हो, कोई कहता है राधास्वामी नाम है, कोई राम को नाम समझता है, कोई कृष्ण को नाम समझता है। कोई निरंकार को नाम बताता है तो कोई हंसा का नाम बताता है। सन्त

ताराचन्द ने बताया कि मैं एक कबीरपन्थी साधु के आश्रम में गया। वहाँ मैंने एक औरत को देखा जो बहुत मस्ती में रहती थी। मैंने पूछा "माता ! तुम किस नाम का सुमिरन करती हो जो तुमको यह अवस्था प्राप्त हुई है ?" उसने कहा "बकरी की तीन टांग।" मैं सुनकर हैरान हो गया और मैंने कबीरपन्थी साधु से पूछा तो उसने बताया कि यह औरत नाम के लिए मुझे तंग किया करती थी तो एक दिन मैंने अपना पीछा छुड़ाने के लिए इस को कह दिया "बकरी की तीन टांग"।

तो इस से क्या प्रमाणित हुआ ? कि सब इन्सान के अपने मन का विश्वास है। गुरु गोबिन्द सिंह साहिब जी से भाई बेले ने नाम मांगा तो उन्होंने कहा :—

भाई बेला न देखें वक्त न देखें बेला।

और उसने उसी को नाम समझ लिया। कृषक जी ने मेरे शब्द को ही नाम समझ लिया और मंज़िलें तय कर लीं। इसलिए यह सब विश्वास और श्रद्धा पर आधारित है। नाम से मन संकल्प करना छोड़ देता है, फिर भजन की बारी आती है। अपनी चेतन शक्ति को अपने आप में इकट्ठा करने का नाम भजन है। सुमिरन और ध्यान, भजन में सहायता देते हैं :—

मेरी बीती उमरिया भजन बिना।

जब तक व्यक्ति अपने संकल्प को सत्य मानता है और जब तक महवीयत (लीनता) या उन्मन अवस्था नहीं आती उसका जन्म-मरण छूट नहीं सकता। अगर किसी को अन्त समय पर कोई गुरु या कोई देवी-देवता भी आ जाता है तो उसको भी दोबारा जन्म लेना पड़ेगा। अगर आदमी को यह विश्वास हो जाये कि जहाँ उसका गुरु जायेगा वह भी वहीं जायेगा, तो शायद उसका विश्वास उसको आगे ले

जाये। लेकिन यह क्या पता कि गुरु भी आगे जायेगा या नहीं। हजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज़ कहा करते थे कि जो लोग हरिद्वार से प्रेम करते हैं वो हरिद्वार में मछलियाँ बनेंगे। अगर यह बात ठीक है तो फिर तो व्यास से प्यार करने वाले भी व्यास के दरिया में मछलियाँ बनेंगे। हरिद्वार में तो मछलियों को आटा तथा पेड़े खाने को मिलते हैं और व्यास की मछलियों को लोग भून कर खाते हैं। मैं यह नहीं कहता कि वो मछलियाँ बनेंगे या नहीं मगर 'अन्तमता सो गता' यह नियम तो प्राकृतिक है। वह तो अपना काम ज़रूर करेगा। मान लो कि एक व्यक्ति मेरे साथ प्रेम करता है उसके अन्त समय पर मेरा रूप उसके अन्दर प्रकट होता हैं तो अगर मरने के बाद मैं ऊपर चला जाऊंगा तो वह भी वहाँ पहुँच जायेगा जहाँ मैं जाऊंगा। लेकिन यह बौद्धिक बात है इसका कोई प्रमाण नहीं है। इसलिए सन्तों ने आवागमन से बचने के लिए भजन का तरीक़ा रखा है ताकि तुमको यह विश्वास हो जाये कि जितने रंग-रूप और शक्लें तुम्हारे अन्दर आते हैं यह सब कल्पित हैं और तुमको अपने आप में ठहरने का अवसर मिले।

मुझे पता नहीं कि क्या बात है, मैं तो अब भजन को भी छोड़ गया मगर जब तक शरीर है तब तक शरीर और मन के बोधभानों को अनुभव करता हूँ और शब्द भी सुनता हूँ। मैं तो यह कहता हूँ कि किसी को भी उस बेअन्त का पता नहीं लगा। सबने यही कहा है कि तेरा भेद किसी को नहीं मिला। मैं तो अब सभी ओर से निहत्था हो कर और सब कुछ छोड़ कर शरणागत हो गया हूँ कि ऐ मालिक! तुमको मिलने के लिए निकला था। तू क्या है, क्या नहीं, किसी को यह पता नहीं किसी को तेरा भेद मिला नहीं इसलिए 'शरणागतम्'। भजन के अन्दर कारण से अहंकार

रहता है। भजन से आगे शरणागत की अवस्था आती है और उसमें अहंकार नहीं होता। आज तुम लोग जा रहे हो, तुम्हारा भला हो और तुम सुखी रहो। मैं नहीं चाहता कि तुमको सत्तलोक मिले, इसकी तुमको अभी आवश्यकता नहीं है। अभी तुमको रोटी, कपड़ा और मकान चाहिए। मैं सच्चे मन से चाहता हूँ कि तुम लोगों को खाने को रोटी, पहनने को कपड़ा, रहने को मकान तथा मन को शान्ति मिले।

मैंने दुनिया देखी। सुमिरन, ध्यान और भजन भी बहुत किया। बहुत समय ध्यान में लगाया। अब तो यह चाहता हूँ कि प्रकृति मुझे यह शक्ति दे कि चोला छोड़ने के बाद मैं संसार को यह बता सकूँ कि मेरा क्या अंजाम हुआ है।

मैंने आप लोगों को बता दिया है कि भजन महवीयत (लीनता) है लेकिन बिना लगन और विराग के महवीयत (लीनता) नहीं आती। अतः जब तक शरीर है तथा शरीर में रहते हो तो अपने स्वास्थ्य का ख्याल रखो, मन में रहते हो तो अपने ख़्यालात को शुद्ध रखो और आगे का साधन करते हो तो प्रकाश और शब्द में चले जाओ :—

पन्थ में आये बने पन्थाई, सूझी न डगरिया भजन बिना।

डगरिया अर्थात् अपने आद घर के बारे तुमने कुछ नहीं सोचा। पन्थ में आकर केवल पन्थाई ही बने। स्वामी जी ने अपनी वाणी में एक जगह कहा है :—

भजन कर मगन रहो मन में,
जो जो चोर भजन के प्राणी, दुःख सहें नित तन में।
भक्ति का सौदा नहीं कीना, बन्द बजरिया भजन बिना।

अब तुम मेरे पास आ गये या किसी और गुरु के पास चले गये तो तुमने वस्त्र दिये या रुपये दिये तो क्या तुम समझते हो कि यह भक्ति है? यह भक्ति सिफली (निम्न-

कोटि की) है। असली भक्ति क्या है :—

भक्ति सुनाई सब से न्यारी, वेद क़तेब न ताहे बिचारी।
सत्त पुरुष चौथे पद बासा, सन्तन का जहाँ सदा बिलासा।
सो घर दरसाया सत्तगुरु पूरे, वीण बजे तहां अचरज तूरे।
आगे अलख पुरुष दरबारा, देखा जाये सुरत से सारा।
तिस पर अगम लोक इक न्यारा, सन्त सुरत कोई करे व्यौहारा।
तहां से दरसे अटल अटारी, अद्भुत राधास्वामी महल सँवारी
सुरत हुई अतिकर मगनानी, पुरुष अनामी जाय समानी।

सन्तों के मार्ग में यह असली भक्ति है लेकिन जिसने बाहर में प्रेम नहीं किया वह अन्दर में भी नहीं कर सकता क्योंकि उसके मन को आदत नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि तुम मेरी मंज़िल पर जाओ वह तो किसी-किसी के भाग्य में आती है :—

जिस पर दया आदकर्त्ता की, सो यह नेमत पावे।

लेकिन यदि कोई उस मंज़िल पर जाना चाहता है तो उसके लिए मैंने रास्ता साफ कर दिया है। अब अमल करना तुम्हारा काम है :—

मन हुआ टूक कलेजा फाटे, माया की नजरिया भजन बिना।

यदि मैं गुरु पदवी पर न आता तो मुझे इस भेद का बिलकुल पता न लगता। मैं तो द्वैत में था तथा इसे जफ्फा मारे बैठा था ;—

अबहूँ सोच समझ अज्ञानी, जा गुरु की सेजरिया भजन बिना।

गुरु की सेज कहाँ है? कोई होशियारपुर में, कोई व्यास, कोई आगरे तथा कोई आनन्दपुर और कोई कहीं बताता है। लेकिन गुरु तो प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में रहता है। गुरु शब्द स्वरूप है। तुम्हारा अपना आपा ही गुरु है। अपने आपे को अपने आप में वापिस ले जाना ही गुरु सेजरिया है :—

राधास्वामी चरन की ओट पकड़ ले,
नाम बिसरिया भजन बिना ।

बाहरी गुरु के चरण पकड़ कर तुम लोग यह समझते हो कि तुमने राधास्वामी के चरणों की ओट ले ली। तुम भूले हुए हो। राधास्वामी मत को चलाने वाले हजूर मुअल्ला मुकद्दस राय सालिग राम साहिब अपनी प्रेम-वाणी में फरमाते हैं कि सतगुरु शब्दस्वरूपी राधास्वामी दयाल हैं तथा उनके चरण प्रकाश हैं। उस प्रकाश को ही शास्त्रों ने सावित्री कहा है।

भागवती सुन्तरी! मेरे साथ प्रेम करने से क्या मिलेगा। मुझे तो लाभ है क्योंकि तुम लोग पैसे देते हो मगर मैं तुम लोगों को धोखा देना नहीं चाहता। दाता दयाल तेरा अपना ही रूप है वह अजर, अमर, अविनाशी है। हजूर दाता दयाल जी तो चोला छोड़ गये मगर तेरा दाता दयाल न जन्मता है न मरता है। इस संसार में लेने-देने का व्यवहार है। कोई बेटा बन कर लेता है और कोई बाप बन कर देता है। प्रत्येक व्यक्ति अपना-२ भुगतान भुगत कर रहता है। बिना भुगतान के यहाँ निर्वाह नहीं है।

सब को राधास्वामी!

नोट :—जब काम में लगें तो दिल की सारी ताकत को इकट्ठा करके काम में लगा दो। यकसूयी ऐसी हो कि दायें-बायें का ज़रा भी ख़्याल न रहे, काम में अपने आपको भूल जाओ और इस तरह दिल लगा कर काम करो कि न घड़ी को टिक-टिक सुनाई दे और न किसी दूसरे की बात कान में आये फिर देखो कि दिन दुगुनी या रात चौगुनी तरक्की होती है या नहीं।

—दाता दयाल

सत्संग परमदयाल जी महाराज

13 - 5 - 1973

गुरु की देन

जग में गुरु समान नहीं दाता,
वस्तु अगोचर दिई सतगुरु ने, भली बताई बाता।
काम क्रोध कैद कर राखे, लोभ को लीन्हो नाथा।
काल करे सो हाल ही कर ले, फिर न मिले यह साथा।
चौरासी में जाय पड़ोगे, भुगतो दिन और राता।
शब्द पुकार पुकार कहत हैं, कर ले सन्तन साथा।
सिमर बन्दगी कर साहिब की, काल नचावे माथा।
कहत कबीर सुनो हो धर मन, मानो बचन हमारा।
पर्दा खोल मिलो सतगुरु से, आओ लोक दयारा।

राधास्वामी ! मौज या मेरा भाग्य या भगवान् की इच्छा किसी वस्तु की खोज मुझे हजूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी के चरणों में ले गई। मैं उनको मालिक, राम या कर्त्तार का अवतार मानता था, उन्होंने मेरे ख़्याल को बड़ी समझ से धीरे-२ बदला और मुझे गुरुमत की ओर लगाया। क्योंकि गुरुमत में सभी धर्मों का खण्डन था और मेरी बुद्धि इसे सहन नहीं करती थी लेकिन हजूर दाता दयाल जी से मेरा विश्वास टूटता नहीं था इसलिए मैंने उस समय प्रण किया था कि इस रास्ते पर सच्चा हो कर चलूंगा और मेरा जो अनुभव होगा वह संसार को

बता जाऊँगा इसलिए मैं यह अपना कर्म भोग रहा हूँ। पता नहीं मेरा यह अनुभव ठीक है या ग़लत है मुझे कोई दावा नहीं है :—

मैं अपनी आत्मा से पूछता हूँ कि क्या गुरु समान कोई दाता नहीं है ? नहीं है। क्यों ? गुरु समझ, विवेक, ज्ञान, अनुभव और विश्वास का नाम है। जब हम बीमार होते हैं तो किसी डाक्टर के पास जाते हैं वह हमारी बीमारी की पाचन शक्ति को देखकर दवाई देता है तथा साथ ही अनुपान और परहेज़ भी बताता है। उससे हमको आराम हो जाता है। तो फिर वह डाक्टर दाता हुआ या नहीं। ऐसे ही इस संसार में जीवन को सुख से गुज़ारने और इस संसार से पार जाने की शिक्षा देने के लिए समय-२ पर जो गुरु या ऋषि या जैन या बोद्ध या मुसलमान फ़कीर या और धर्मों के बजुर्ग प्रकट हुए उन्होंने संसार को बताया कि अपने संकल्प को ठीक रखो। अपने ख़्यालात और अपनी वासनाओं को शुद्ध रखो। तुमको जो कुछ मिलता है वह तुम्हारे अपने ख़्यालात और अपनी वासनाओं का फल है। इसी का नाम वेदमार्ग है। मैंने इस नियम को अपने जीवन में भी तथा तुम लोगों के जीवन में भी खूब आज़माया है। इसीलिए मैं कहा करता हूँ कि आशावादी रहो।

जो लोग मेरी बात पर विश्वास कर लेते हैं वह अपने ख्याल से मेरा रूप बना लेते हैं। वह रूप उनको दवाइयाँ बता जाता है, उनके अन्त समय पर उनको ले जाता है, उनके पेपर हल करा जाता है तथा उनके कई प्रकार के कार्य कर जाता है लेकिन मैं नहीं होता और न ही मुझे ऐसी बातों का उस समय पता चलता है। इसलिए मुझे विश्वास हो गया कि गुरु, संसार में ज्ञान और समझ देता है। क्या ज्ञान देता है ? कि ऐ इन्सान यह सारा संसार मनोमते है,

मायामते संसार है, यह विचार की रचना है तुम्हारे विचार में बहुत शक्ति है। "जैसा ख़्याल वैसा हाल, जैसी मति वैसी गति और जैसी करनी वैसी भरनी।" तुलसीदास जी ने भी रामायण में लिखा है :—

कर्म प्रधान विश्व कर राखा, जो जस कीन्ह तस फल चाखा।

इसलिए गुरु समान कोई दाता नहीं है। बशर्ते कि आदमी गुरु की बात पर अमल करे। बहुत से आदमी ऐसे भी हैं जो अपने जीवन को बदलना चाहते हैं लेकिन वह बदल नहीं सकते क्योंकि जो पहले जीवन में संकल्प किये हुए हैं जब तक उनका प्रभाव नष्ट नहीं होगा वह अपनी नई चाह को कैसे पूरा कर सकेंगे! है तो कर्म का ही चक्कर, मगर उसको पहले काटना पड़ेगा। दूसरों को क्या कहूँ, मैं अपनी बाबत जानता हूँ कि मुझे अब तक भी रेलगाड़ी और तार नहीं छोड़ते। रात को अभ्यास में मैंने सुनहरी रंग की बड़ी सुन्दर रोशनी देखी। मन चाहता था कि इसे फिर देखूं मगर वह प्रकाश नहीं आया। रात को साढ़े तीन बजे फिर उसे देखने का प्रयत्न किया मगर असफल रहा। अब भी समाधि में बहुत प्रयत्न किया लेकिन वह प्रकाश नहीं आया।

यह प्रकाश मुझे क्यों नज़र आया? कल सायं जो मैंने प्रकाश और शब्द के बारे सत्संग दिया यह उसका प्रभाव मेरे दिमाग़ पर रहा। अब मेरे मन में विचार आया कि दुनिया गुरु के द्वारा दान करती है उनकी ज़िन्दगी क्यों नहीं बदलती। लेकिन इसका कारण यह है कि जब तक पहले कर्मों का प्रभाव नष्ट नहीं होगा तब तक जीवन नहीं बदलता, इसमें समय लगता है। मैंने कल अच्छा विचार ही लिया था। प्रकाश के बारे ही सत्संग था न! इसलिए वही विचार दिमाग़ में रहा तथा रात को प्रकाश नज़र आया।

कल के सत्संग में वाणी में आया था कि तन, मन और धन गुरु को दो तथा गुरु की सेवा करो। कल दो औरतों ने ५१-५१ रुपये दिये। मैंने कहा कि तुमने यह रुपये दिये अब यह तुम्हारे नहीं रहे। इनका विचार दिल से निकाल दो। एक इन्सान अपने गुरु की टाँगें या शरीर अपने हाथों से दबाता है या अपने तन से गुरु की सेवा करता है तो सेवा तो वह शरीर से करता है और शरीर उसके साथ है तो उसने गुरु को तन कैसे दिया? ऐसे ही मन के बारे में है, एक व्यक्ति कहता है कि मैंने गुरु को मन अर्पण कर दिया है लेकिन मन तो उसके साथ है और वह मन से भिन्न-२ प्रकार के विचार उठा रहा है इसलिए उसने गुरु को मन कैसे दिया? मैंने बताया कि कोई भी व्यक्ति अपना तन और मन बाहरी गुरु को अर्पण नहीं कर सकता। तन और मन गुरु को कब अर्पण होता है? जब तुम्हारी तवज्जह शरीर को भूल जाये और मन संकल्प-विकल्प उठाना बन्द कर दे। यह तब होगा जब तुम्हारी सुरत शब्द और प्रकाश में चली जायेगी अर्थात् ज्ञानरूप में चली जायेगी। हजूर मुअल्ला मुक़द्दस राय सालिगराम जी ने अपनी वाणी में फरमाया है कि सत्तगुरु शब्द-स्वरूपी राधास्वामी दयाल हैं तथा उनके चरण प्रकाश हैं। तन और मन यदि दिया तो राजा जनक ने दिया। जब अष्टावक्र ने भेंट माँगी तो राजा जनक ने सारा राज्य दे दिया फिर गुरु को तन दिया और फिर मन दे दिया और संकल्प रहित हो गया। शेष जो अवस्था रह गई उसका नाम गुरु है। ऋषि अष्टावक्र ने फिर राज-पाट राजा जनक को वापिस कर दिया और ज्ञान समझा दिया।

बाहरी गुरु की यह ड्यूटी है कि वह जीव को संसार में जीने का तथा संसार से पार जाने का भेद बता दे। यह भेद तो मैंने बता दिया कि जब तक शरीर में हो शरीर को

स्वस्थ रखने का प्रयत्न करो इसकी सम्भाल करो, जिह्वा के चसके में मत आओ, विषय-विकार को कम करो, और जब मन में हो तो 'शिवसंकल्पमस्तु' के अनुसार मन को अच्छे ख़यालात दो। मेरे अनुभव में यह बात आई है कि यह जितने लोग ज़्यादा भक्ति करते हैं इनमें ७५ प्रतिशत ऐसे व्यक्ति हैं जिनमें वीर्य की कमी है और जिन्होंने विषय ज़्यादा भोगा है। इसीलिए तो ऋषियों ने यह नियम बनाया था कि २५ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचारी रहो, अच्छी संगति करो। यही गुरु की दया है। गुरु समझ और ज्ञान का नाम है। फ़कीरचन्द का नाम गुरु नहीं है :—

जग में गुरु समान नहीं दाता।
वस्तु अगोचर दिई सत्तगुरु ने, भली बताई बाता।

मैंने जो कुछ तशरीह (व्याख्या) की है वह ग़लत नहीं है मगर गुरु की बात को कोई सुनता नहीं है। केवल गुरु-गुरु ही चिल्लाते हैं और या गुरु का ढिंढोरा पिटवाते हैं कि अमुक दिन पैदा हुए, ज़िन्दगी में यह कार्य किया और अमुक तिथि को चोला छोड़ गये। गुरु वास्तविकता, यथार्थता और विश्वास का नाम है। दुनिया की उन्नति तथा घर की शान्ति रखने के लिए ऋषियों ने मां-बाप, भाई-बहन, औरत-मर्द और बेटे के धर्म निश्चित कर दिये। यह संसार की भलाई के लिए उन्होंने निश्चित किये ताकि हमारा जीवन सुख से गुज़र जाये। यही मैं कहता हूँ। केवल व्याख्यान के ढंग में अन्तर है। ऋषियों ने संस्कृत में तथा कठिन शब्दों में वर्णन किया और मैंने उसे सरल ढंग से बता दिया :—

काम क्रोध कैद कर राखे, लोभ को लीन्हो नाथा।

मेरे मन में यह प्रश्न पैदा होता है कि गुरु ने तुमसे काम, क्रोध कैसे छुड़ाया? मैं केवल अपने लिए कहता हूँ

दूसरों का मुझे पता नहीं। जब मैं बसरे-बग़दाद में था तो अभ्यास में अपने अन्दर वीण सुनता था, प्रकाश देखता था लेकिन जब वापिस आया तो क्या फिर मैं कामी नहीं हुआ ? हुआ :—

पर उपदेशे नर बहुतेरे, निज उपदेशे हैं नर थोरे।

क्या सूर्य, चाँद, सितारे और प्रकाश अपने अन्दर देखने से और वीण सुनने से मेरा काम समाप्त हो गया ? नहीं। १२ वर्ष पश्चात् बसरे-बग़दाद से घर वापिस आया और काम में फँस गया। इससे यह प्रमाणित हुआ कि प्रकाश को देखने वाले और शब्द को सुनने वाले भी कामी हो जाते हैं और चिन्तित हो जाते हैं। (एक व्यक्ति की ओर संकेत करते हुए) यह अभ्यास करता है। यह कहता था कि मैं ऐसा हूँ और मैं वैसा हूँ, यह करूंगा और वह करूंगा। जब लड़के का काम नहीं बना तो घबरा कर भागा हुआ यहाँ आया। क्या तेरे अभ्यास ने तुमको चिन्ता से बचा लिया ? तुम गुरु बनना चाहते हो। यह वह भेद है जिसको कोई गुरु लोगों को नहीं बताता। अगर मैं कहूँ कि मेरा मोह चला गया तो यह ग़लत है मगर अब वह पहले वाला जज़बा नहीं रहा। मैं भी अपने बच्चों को उठाये लिये फिरता था और उनके साथ खुश होता था। तो कैसे कहूँ कि अभ्यास से मेरा मोह चला गया। अब लोभ के बारे सुनो। गो ! मैंने रिश्वत नहीं ली मगर यह तो मैं भी चाहता था कि मेरी तरक्की हो जाये और मुझे भी ज़्यादा रुपया मिले। मुझे अहंकार भी था। अहंकार की कई शक्लें होती हैं। उदाहरणतया मैं राधास्वामी मत का हूँ। महर्षि जी महाराज का गुरुमुख हूँ। तो फिर गुरु ने भी क्या बात बताई ? मेरा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार कैसे समाप्त हुआ ? केवल इस समझ से कि मैं कौन हूँ। यह समझ मुझे आप लोगों से

मिली। इसलिए आप लोग मेरे सच्चे सत्तगुरु हैं। जब आप लोगों ने कहा कि मेरा रूप तुम्हारे अन्दर प्रकट होता है और तुम्हारे कई प्रकार के काम कर जाता है लेकिन मैं तो होता नहीं। तो मैं सोचने के लिए विवश हो गया कि तुम्हारे अन्दर जो फ़कीरचन्द प्रकट होता है, वह कौन है? वह तुम्हारा अपना ही अहंभाव है, तुम्हारा अपना ही विश्वास और श्रद्धा है। इस ज्ञान से मुझे यह विश्वास हो गया कि मेरे अन्दर भी जो रंग, रूप, भाव और विचार पैदा होते हैं यह संस्कार हैं, वास्तव में यह हैं नहीं। इस ज्ञान से मैं काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के जज़बात में फँसा नहीं। हो सकता है कि कबीर साहिब ने या किसी और सन्त ने अपने चेलों के काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को फूंक मार कर दूर कर दिया हो। मुझे पता नहीं। मैं खण्डन नहीं करता मगर इस शब्द में उन्होंने ऐसा नहीं कहा। उन्होंने तो धर्मदास को अपना पर्दा न खोलने के लिए कहा है। अगर कबीर साहिब पर्दा खोल सकते तो वह धर्मदास को ऐसा क्यों कहते? इसलिए गुरु की बात को समझ कर तुमने स्वयं पर्दा खोलना है। मेरी समझ में तो यह आया है कि यह संसार संकल्पमय है। अब अगर किसी समय मुझे कोई विचार आ भी जाता है तो विचार से उसे काट देता हूँ। मेरा अनुभव है और कोई तरीक़ा मेरी समझ में नहीं आया। मेरी संगत अच्छी थी। मैंने बाहर कोई बुराई नहीं की। चाहे, मैंने रिश्वत नहीं खाई और जायज़ (उचित) पैसा लिया लेकिन तरक्की के विचार मेरे अन्दर भी मौजूद थे। गुरु सच्चा भेद, सच्चा ज्ञान और सच्चा विवेक देता है। इसलिए राधास्वामी मत में गुरु की अज़मत (बड़ाई) है :—

गुरु ने दीना भेद अगम का, सुरत चली तज देश भरम का।
बल पाया अब विरह मरम का, भटकन छूटा दैरो हरम का।
बरसन लागा मेह करम का, संशय भागा जनम मरण का।

तुम गुरुपशु बन कर गुरु को पूजते हो। तुम लोग गुरु को उचित अर्थों में समझते नहीं हो। बहुत से व्यक्तियों के प्रतिदिन पत्र आते हैं। कई प्रकार के पश्नों के उत्तर पूछते हैं लेकिन उत्तर के लिए कार्ड नहीं भेजते, ऐसे व्यक्तियों को क्या मिलेगा ? एक बार एक अमीर व्यक्ति मेरे मकान पर आया। मैंने पूछा—क्या खाली हाथ आये हो ? कहने लगा जी हाँ। मैंने कहा—जाओ। प्रत्येक वस्तु कुर्बानी चाहती है। किसी को कोई वस्तु मुफ्त नहीं मिलती। अगर किसी को मुफ्त मिल भी जाये तो वह उसकी क़दर नहीं करता। हमने जीवन भर कुर्बानी करने के बाद यह प्राप्त किया है। राजा, शासक, गुरु और बच्चों के पास कभी खाली हाथ मत जाओ। चाहे फूल ही ले जाओ। श्री आनन्द राव जी ने बताया कि जब हज़ूर दाता दयाल जी महाराज से उनका मेल हुआ तो विनती की कि महाराज ! क्या भेंट लाऊँ। उन्होंने फरमाया कि दो पतासे और दो फूल ले आना। तुम लोगों को यह गुर बता रहा हूँ। पति जब घर में जाता है अगर वह पत्नी के लिए कोई अच्छी वस्तु ले जाता है बाप, भाई, बहन इत्यादि यह सब हर समय तुम से लेने के लिए तैयार रहते हैं लेकिन मां में यह आदत बहुत कम है। गुरु तुमको घर में शान्ति रखने तथा जीवन गुज़ारने का गुर बताता है :—

काल करे सो हाल कर ले, फिर न मिले यह साथा।
चौरासी में जाये पड़ोगे, भुगतो दिन और राता।

तुमने जो कुछ करना है इस जीवन में कर लो ताकि तुम्हारा आवागमन मिट जाये। मैं अपनी आत्मा से पूछता

हूँ कि तुम अपने आपको सत्तगुरु कहते हो बताओ क्या तुम्हारा आवागमन समाप्त हो गया ? यदि हो गया है तब तो तुम लोगों को कहने का अधिकार रखते हो वरना नहीं। मैंने किसी को नाम नहीं दिया केवल सत्संग कराता हूँ। जब से मुझे मालूम हुआ कि मेरा रूप लोगों के अन्दर प्रकट होता है तथा उनके अनेक प्रकार के काम करता है तो मैं मन के ख़्यालात और रंग-रूप जो मेरे अन्दर प्रकट होते हैं उनको छोड़ने के लिए विवश हो गया। अब मन से परे प्रकाश और शब्द में चला जाता हूँ और वहाँ उस वस्तु की खोज करता रहता हूँ जो शब्द को सुनती और प्रकाश को देखती है मगर उसका पता नहीं लगता। इतना अभ्यास करने के बाद भी मैं कुछ नहीं बन सका। अगर बन गया होता तो मुझ में कोई शक्ति आ जाती और मैं कम से कम अपनी ही बीमारी को दूर कर लेता। सब सन्तों ने अपनी अन्तिम आयु में दुःख उठाये। किसी की सन्तान नालायक निकली, किसी की सन्तान आज्ञाकारी नहीं थी, किसी का अपनी पत्नी के साथ झगड़ा रहता था इससे प्रमाणित होता है कि अगर कोई सन्त ऊँची अवस्था में पहुँच भी गया तो उसके हाथ कुछ नहीं आया। इन सन्तों के चेले जिन्होंने ३५, ४० वर्ष से नाम ले रखा है वह आज तक भी शब्द और प्रकाश से कोरे हैं।

मैं इस परिणाम पर आया कि ज़िन्दगी क्या है ? जीवन एक तत्त्व है, उसमें हिलोर आती है और एक बुलबुला बन जाता है। कहीं वह शरीर रूप है, कहीं वह मन रूप है, कहीं वह आत्मा है और कहीं वह सुरत रूप है। तथा बुलबुला एक दिन टूट जायेगा। जब तक व्यक्ति को यह ज्ञान नहीं होता तब तक उसका अहंकार या मैंपना नहीं जा सकता। जब यह ज्ञान हो गया तो फिर मरने का क्या भय। शरीर

ने एक बार बनना था वह बन गया। जन्म-मरण का जो संशय था वह समाप्त हो गया। तो इससे मुझे क्या मिला? शान्ति। मुझे तो गुरु से यह मिला। शायद दूसरे गुरु अपने चेलों को कुछ और देते होंगे मुझे तो पता नहीं। हजूर दाता दयाल जी महाराज ने शिक्षा को बदलने की आज्ञा दी थी, जो कुछ मेरी समझ में आया वह कह दिया। हो सकता है यह ग़लत हो मुझे कोई दावा नहीं। अब अन्तिम आयु आ गई है, चले-चलाओ का समय है। क्यों पाखण्ड जगाऊँ :—

शब्द पुकार-२ कहत हैं, कर ले सन्तन साथा।
सिमर बन्दगी कर साहिब की, काल नचावे माथा।

सन्त आवाज़ देते हैं कि सत्संग करो। सत्संग भी किसी योग्य पुरुष का होना चाहिए। जो पुस्तकों के उदाहरण देते हैं या अपनी पूजा करवाते हैं मैं उनको सन्त नहीं समझता। इस शब्द में कबीर साहिब ने यह कहा है—'सिमर बन्दगी कर साहिब की'। उन्होंने यह तो नहीं कहा कि मेरे नाम की बन्दगी करो :—

कहत कबीर सूनो हो धर मन, मानो वचन हमारा।
पर्दा खोल मिलो सत्तगुरु से, आओ लोक दयारा॥

पर्दा खोलने से भाव यह है कि अपने आप में सच्चे बन कर किसी महापुरुष के सत्संग में जाओ। अब समय बदल गया है इसलिए बात को विचारो। अब दुनिया अन्ध-विश्वासी को नहीं मानती। सत्संग में यदि बात को ठीक समझते हो तो उस पर अमल करो। लेकिन आजकल क्या हो रहा है? हमारे जनरल साहिब कहते हैं कि बाबा जी जो बात कहते हैं उसको वेद की वाणी तसदीक (साबित) करें ताकि भविष्य में कोई व्यक्ति इनकी बात पर बाद-विवाद न कर सके मगर कहाँ मैं और कहाँ वेद। वेद का अर्थ वह करेगा ओ योग्य होगा। जो योग्य नहीं है वह वेद

का ठीक अर्थ नहीं कर सकता। जैसे आज के सत्संग कराने वाले वाणी का अर्थ नहीं समझते। परसों के सत्संग में स्वामी जी महाराज की जो वाणी पढ़ी गई उसमें था कि तुमको तीन लोक का राज्य मिलेगा। दुनिया यह समझती है कि अभ्यास करके हम राजा बन जायेंगे।

शरीर, मन और आत्मा तीन लोक हैं। जो व्यक्ति महासुन्न से आगे साधन करता है उसको गुरुज्ञान मिल गया है वह इन तीनों के बोधभानों पर Control (संयम) रख सकेगा तथा इसमें नहीं फँसेगा, इसका वास्तविक अर्थ यह है। मैं रोचक और भयानक वाणी का भी खण्डन नहीं करता, यह भी आवश्यक है। जिनकी बुद्धि इतनी तेज़ नहीं है उनके लिए यह आवश्यक है। आजकल अकल बढ़ गई है इसलिए शिक्षा को बदलने की आवश्यकता है।

अपने कर्मभोग वश मैंने अपने आप को ही सत्संग कराया है। मैं गुरुमत में हूँ। गुरु की हैसियत में मैं जब लोगों को उपदेश करता हूँ तो अपने आप से पूछता हूँ कि पहले यह बताओ कि तुमको गुरुमत से क्या मिला? जो तुम दूसरों को उपदेश करते हो, मैंने जो समझा वो कहा। हो सकता है कि यह ग़लत हो। मुझे कोई दावा नहीं है। मगर मुझको इस अनुभव से शान्ति मिली। वहम और भ्रम चले गये। पहले मैं जो हाय-हाय किया करता था वह समाप्त हो गई। मेरा मार्ग तो अब शरणागत का आ गया है। दौड़-२ कर थक गया। अब शरणागत की लाज वह एक मालिक है, वह अकह, अपार, अगाध और अनाम है। अपने आपको उसके समर्पित करता रहता हूँ। गो! मन अब भी चंचल है मगर ध्यान और विचार से उसको काबू करता रहता हूँ।

अभ्यास से तुम्हारी इच्छाशक्ति बढ़ेगी और इससे तुमको आनन्द मिलेगा मगर इससे तुम मन को मार नहीं सकते। यह गुरुज्ञान से और समझ से काबू आयेगा। इसीलिए गुरु समझ, विवेक और ज्ञान का नाम है। सब को राधास्वामी!

सत्संग परमदयाल जी महाराज

14-10-1973

गुरुमत की महिमा

राधास्वामी !

आप लोगों को या संसार को कुछ बताने के पहले मैं अपने आप से पूछता हूँ कि तूने क्या किया ज़िन्दगी में और क्या करता है ? मुझ में बचपन से किसी चीज़ को प्राप्त करने की इच्छा थी। यह इच्छा मुझे ही नहीं सबको है। कोई दौलत चाहता है, कोई इज्ज़त चाहता है, कोई पुत्र चाहता है, कोई मुक्ति या निजात चाहता है। मैं यह नहीं कहता कि मुझे चाह नहीं है। सब में कुछ न कुछ चाह मौजूद है। यही चाह मुझ में भी थी। मैं यह जानना चाहता था कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊंगा, मेरा परमात्मा कहाँ है ? इस खबत में ज़िन्दगी भी गुज़ारी है। मेरी खुशकिस्मती सन् १९०५ में दाता दयाल जी के चरणों में ले गई। उन्होंने यह काम दिया था। गुरु आज्ञावश अपने तजुर्बे से सत्संग कराता रहता हूँ। किताबें लिखता हूँ, टेप रिकार्ड भरवाता हूँ। कई दफा मैं अपने को सन्त सद्गुरु वक्त भी कह देता हूँ। मैं अपने से पूछता हूँ कि यदि तू सन्त सद्गुरु वक्त है तो क्या देता है दुनिया को ? दाता दयाल जी का शब्द है :—

गुरु हुये संसार में परगट, गुरु से ज्ञान लो।
छोड़ दो पाखंड को, गुरुमत की महिमा जान लो।

अब यह एक सवाल है—कि दाता क्या ज्ञान देते थे ? वे क्या ज्ञान देते थे यह तो उनको ही पता होगा। उन्होंने गुरुमत को क्या समझा ? वे ही जानते होंगे। हर आदमी की ज़रूरतें, आशाएँ अलग हैं। हर आदमी की आशाएँ पूरी कराने का ज्ञान, तरीक़ा, अमल, समझ अलग है। गुरुज्ञान क्या है ? वह समझ है जिससे हमारे मन को तस्कीन (शान्ति) मिले, अमन मिले, आनन्द मिले। शान्ति या इच्छा पूरी करने की भावना ; व्यक्ति, समाज और मुल्कों में भी है, परिवारों में भी है। कोई भी कुछ आशा है, कोई की कुछ है। एक ही तरीक़ा सब के माफिक नहीं हो सकता। एक तो जनरल सत्संग होता है वह आम के लिये होता है—एक ख़ास के लिये होता है। जनरल सत्संग स्वास्थ्य विभाग के जैसा है। स्वास्थ्य विभाग बीमारियाँ न फैलें, सफाई रहे हर एक का इन्तजाम करता है। हस्पताल जैसा मरीज़ होता है—उसकी बीमारी के अनुसार टीके लगाकर, दवा देकर या आपरेशन करके बीमार की ठीक करता है—ऐसा खास सत्संग करता है। इस वास्ते गुरु की महिमा है। गुरु हालात, ज़रूरत के अनुसार राय देता है, हिदायत करता है, तजवीज़ बताता है कि उसके मिलने वाले की मनोकामना पूरी हो या शान्ति मिले। यही दाता किया करते थे। मुझे दाता का पता है और गुरुओं का पता नहीं कि वे क्या करते हैं—दाता से ही मेरा व्यवहार था, उनकी रीति का पता है। दाता का हुकम मुझे और मिला, मेरे छोटे भाई को बचपन में नाम दिया उसे कहा था इसे जपना नहीं—तेरे लिये ज़िन्दगी के माने काम और काम के माने ज़िन्दगी है। वही हुआ। छोटे भाई ने बहुत तरक़्क़ी की, रेलवे का ट्रैफिक मैनेजर हुआ। २५०० रु० तनख्वाह लेकर रिटायर हुआ, राय साहिब का खिताब भी उसे मिला, अब वह विरक्त

हो गया है। यही दाता ने कहा था—तुझे वक्त आने पर शरण मिल जायेगी। मेरी औरत जो दुःखी रहा करती थी उसे कहा था, जो तुझे एक सुनावे उसे तू गिन कर सोलह सुनाया कर। दाता कश्मीर गये, वहाँ पं० भास्करनाथ के यहाँ ठहरे। १९३२ में वहाँ सत्संग हुआ था। सत्संग में बहुत से कश्मीरी पण्डित भी आये हुए थे। सत्संग में दाता ने कहा 'हिंसा परमो धर्मः'। पंडितों ने कहा हिंसा परमो धर्मः नहीं, अहिंसा परमो धर्मः है। दाता ने कहा तुम्हारे लिए हिंसा परमधर्म है। तुम पर मुसीबत आने वाली है। हिन्दु-मुसलमान का झगड़ा होगा। तुम संगठित हो जाओ, मरो और मारो, अपनी रक्षा करो। उनकी औरतों को कहा—बुरके पहनना छोड़ो, कमर में छुरियाँ बाँधो। वही हुआ पण्डितों पर हमला हुआ, उन्होंने अपनी रक्षा कर ली। एक स्वामी गोबिन्दकौल थे। हाल ही में गुज़र गये हैं। वे दाता के पास आये चेला बनने को। दाता ने कहा "एक शर्त पर चेला बनाता हूँ। तुमने मेरे से परमार्थ के मुतल्लिक कोई सवाल नहीं करना, बस बैठे रहो और मेरा सत्संग सुनते रहो। भूप सिंह क्या देखता है मेरी तरफ! तुझे दसवें द्वार से आगे ले जाता बशर्ते तू मेरी आज्ञा मानता।" एक कुबेरनाम हैं वकील, इसको हुकम था, जिस काम को करने में तुमको मुसीबत आवे अड़चनें आवें समझो बस काम पूरा हो जायेगा। गुरु जब संसार में प्रकट होते हैं समय के लिहाज़ से होते हैं। कुदरत का नियम है जहाँ जैसी ज़रूरत होती है वहाँ वैसी चीज़ पैदा हो जाती है। जब गर्मी ज़्यादा होती है, ठण्डी हवा आती है बारिश भी हो जाती है। कुदरत के कानून में गुरु भी आते हैं—कुदरत के यहाँ कानून है। कहा है :—

गुरु हुये ससार में परगट, गुरु से ज्ञान लो।
छोड़ दो पाखंड को, गुरुमत की महिमा जान लो।

गुरुमत है क्या ? गुरु नाम तो अनुभव, समझ, विवेक का है। ज्ञान का नाम गुरु है। ज्ञान आदि प्राप्त करो। आजकल ज़माने में गुरुमत का ज़ोर है। निरंकारियों के गुरु, कबीरमत के गुरु, राधास्वामी मत के गुरु, रामकृष्ण दायरे के गुरु, शिवानन्द के दायरे के चेले, शंकराचार्य के चेले, चारों तरफ गुरु ही गुरु हैं—तुम लोगों के अन्दर या दूसरों के अन्दर, अमेरिका, अफ्रीका, यहाँ, वहाँ हर कहीं मेरा रूप प्रकट होता है और मैं वहाँ नहीं होता हूँ तो कौन जाता है ? यह उन लोगों के श्रद्धा, विश्वास और कर्म का तथा प्रेम का फल है। मगर हम महात्मा लोग उसका नाजायज फायदा उठाकर गृहस्थियों को ग़लत प्रकार से लूटते हैं और इन्सान को हमने अलग-अलग पन्थों, डेरों, मज़हबों में बाँट दिया है। कट्टरता फैला दी है, इन्सान का आपस का प्रेम नष्ट कर दिया है। अभी दशहरे पर तीन सत्संग दिये हैं जिन्होंने सुने होंगे वे जानते होंगे कि मैंने क्या कहा है। जो कहता हूँ उसका सबूत भी देता हूँ।

दशहरे के सत्संग के बाद त्रिवन्द्रम मिलिटरी कैम्प के सूबेदार हज़ारी सिंह की एक चिट्ठी आई— चिट्ठी काफी लम्बी है उसका सार सुनाता हूँ सुनो, वह क्या लिखता है ?

"परम पुरुष पूर्णधनी पूज्य सत्तगुरु जी महाराज को दास का राधास्वामी !

यह पत्र आपकी सेवा में पौने दो महीने बाद लिख रहा हूँ। मैं नौ माह से त्रिवेन्द्रम में हूँ। मेरे साथियों का विचार धनुष्कोटि देखने को जाने का हुआ। मैंने अपने आफिसर्स को कहा तो उन्होंने दो स्टेशन वैगन हमें वहाँ जाने के लिये दे दीं। ता० १२-८-७३ को सुबह एक गाड़ी में जवान साथी तथा दूसरी में जनानी सवारियाँ, बच्चे तथा कुछ जवान भी थे, हम लोग सुबह पाँच बजे रवाना हुए।

रवाना होते समय मेरे अन्दर से आवाज़ आई कि आज हम धनुष्कोटि न जा सकेंगे।

रास्ते में पिछली गाड़ी का ड्राइवर गाड़ी चलाते हुए पीछे बैठी हुई जनानी सवारियों की तरफ देखता था। मुझे और भी खटका हुआ कि कहीं वह ऐक्सीडेंट न कर दे। रवाना होने के पहले मैंने दोनों ड्राइवरों को हिदायत कर दी थी कि आहिस्ता गाड़ियाँ चलाना है। मैंने दो-तीन बार पिछली गाड़ी के ड्राइवर को पीछे देखते हुए देखा। मैंने आप से प्रार्थना की तो आपने मेरे अन्दर में प्रकट होकर कहा-सामने देख मैं सबको बचा लूँगा। इतने में मेरी गाड़ी के ड्राइवर का बैलेंस बिगड़ गया और गाड़ी उलट गई। मैंने गाड़ी को पलटते हुए देखा। उसने चार पलटियाँ खाईं और नीचे खेत में जा गिरी। मेरे साथ मेरा बच्चा भी गोद में था, मेरे नीचे बच्चा और मेरे ऊपर गाड़ी थी। पिछली गाड़ी के लोगों ने गाड़ी को गिरते देखा। उनकी सबकी राय बनी थी कि अगली गाड़ी का एक भी आदमी ज़िन्दा न बचेगा। पिछली गाड़ी के लोग नीचे आये। खेत में कीचड़ था। उन्होंने गाड़ी के नीचे से मुझे तथा मेरे बच्चे को निकाला। दो सवारी और भी गाड़ी के नीचे थीं उन्हें भी निकाला। बाकी सवारी गाड़ी में थीं उन्हें भी निकाला। सब मिलिटरी हेडक्वार्टर से एम्बुलेंस वग़ैरह मदद माँगने का विचार कर रहे थे कि अचानक दो टैक्सियाँ आईं और उनमें रखकर सब को पास के हस्पताल में ले जाया गया। जब मैं होश में आया तब मुझे पता चला कि मेरी चार पसलियाँ टूट गई हैं और कमर में सख़्त चोट आई है। मगर खतरनाक ऐक्सीडेंट से मरा कोई नहीं था।

मुझे सख़्त दर्द था सारे दिन कराहता रहा। रात को आप आये। मुझे नींद दर्दों के कारण नहीं आ रही थी।

आपने मेरी पसलियों और कमर को दबाना शुरू किया। जिससे मुझे पचास फीसदी आराम आया, मैंने कहा और भी दबाइये तो आपने कहा—दीगर मरीज़ सो रहे हैं, जाग जायेंगे, अब तू भी सो जा तुझे आराम आ जायेगा। उसी समय मेरी पत्नी अपने घर पर तीसरी मंज़िल पर आपके फोटो के सामने कैंटिन से एक रुपये का प्रसाद मंगवाकर मेरी बेचैनी की वजह से बेचैन होकर मेरी सेहत के लिए आप से प्रार्थना कर रही थी। दरवाज़े बन्द थे, कमरे में आने का कोई रास्ता नहीं था। उसने दूसरे दिन हस्पताल में आकर बतलाया कि आप तीसरी मंज़िल की खिड़की के रास्ते से उसके पास गये और कहा—मैं तेरे पति के पास से आया हूँ उसे सुला दिया है। वह जल्दी अच्छा हो जायेगा। घबराओ नहीं। वह कहती थी कि महाराज जी इतने बुढ़ापे में खिड़की के रास्ते से कैसे आये ?

मैं अब ९५% आराम पा गया हूँ। मुझे मेरे साथ गुज़रने वाली बातें आप बताते रहते हैं। मेरा लड़का मेरे पिता के पास मथुरा के निकट गाँव में था। वहाँ उसे चेचक निकली। वह मेरी औरत के सपने में तीन रात तक आया और कहा कि मुझे तुम या पिता जी आकर ले जाओ। मैंने अपने पिता को लिखा मगर उन्होंने उसे हमारे पास न भेजा। तब मैं एक दिन टैक्सी लेकर उसे लेने गया। रास्ते में मुझे झपकी लगी तो लड़का कहता है—आपने देरी कर दी, जल्दी आते और मेरी लाश के पास बैठकर गुरु जी को याद करते तो मैं मरा हुआ भी जी जाता। अब मैं न मिलूंगा। घर गया तो पता लगा कि उसे दफना दिया गया है।

क्या वह लड़का मुझे मिल सकता है ? आप हमेशा साथ रहते हैं तो मेरा साधन, अभ्यास ठीक क्यों नहीं बनता ? मुझे जब बताया कि दुर्घटना होवेगी तो फिर मैं ही

क्यों ज़रूमी हुआ ?"

अब तुमने यह खत सुना। सुना या नहीं सुना मैं झूठ नहीं बोलता, मुझे इस घटना का कोई पता नहीं। वाणी है :—

गुरु हुए संसार में परगट, गुरु से ज्ञान लो।

मैं अपने से ही पूछता हूँ कि तू खुद को सन्त सद्गुरु-वक्त कहता है, क्या ज्ञान देता है ? मैं यह ज्ञान देता हूँ कि मैं नहीं गया, न कोई गुरु जाता है। यह जितना गुरुइज्म है दुनिया में यह सब पाखंड का जाल है, धोखा है और फरेब है। हम गृहस्थियों को बेवकूफ बनाकर लूटा जा रहा है। हमारी दौलत छीनी जा रही है। वह जो भी तुम्हारी मदद करता है वह तुम्हारा अपना विश्वास, श्रद्धा व यक़ीन है। मैं सच्चा ज्ञान देता हूँ कि हम संसारी तो पाखंड में फँसे हुए हैं। कोई राम, कोई कृष्ण, कोई हज़रत मुहम्मद, कोई बाबा फ़कीर, कोई ऐसी मदद नहीं करता जैसी इस चिट्ठी में लिखी हुई है। वह इस तरह से मदद करने वाला तुम्हारी ही आत्मा है। जीव निबल हैं, अबल हैं, अज्ञानी हैं, सहारा चाहते हैं। मुबारिक हैं वे महात्मा जो इन अज्ञानी मूर्खों को सहारा देते हैं। मगर उनके सहारा देने से जीवों को जो मिलता है उसका क्रेडिट लेते हैं ये गुरु, अपनी जायदाद बनाते हैं, अपने डेरे बनाते हैं, मोटरें खरीदते हैं।

तुम आते हो मेरे पास, मेरी भी ज़िम्मेवारी है। मैं जो कहता हूँ मैंने दशहरे पर जो कहा यह सच्चा ज्ञान है। मैं चाहता हूँ इसकी किताब छपे। यह ज्ञान तुमको ही नहीं संसार को देता हूँ। इस किताब का नाम 'सन्त सद्गुरु की सदा' रखा जाये। जीव तो आशावाद में हैं। आशाओं में फँसने के कारण आर्त हो जाते हैं। आर्त की बुद्धि सन्तुलित नहीं रहती। कहा है :— (क्रमशः)

सत्संग परमसन्त
हजूर मानव दयाल जी महाराज,
रक्षा-बधन पर्व पर
मानवता मन्दिर होशियारपुर
30 - 8 - 85

राधास्वामी !

आज रक्षा-बन्धन है, जो हमारा राष्ट्रीय पर्व है। इस का मतलब क्या है? ऐसा उत्सव जिसमें हम रक्षा के लिये प्रार्थना और संकल्प करते हैं। बहन भाई को राखी बाँधती है—'हे रक्षा, तू मेरे भाई की रक्षा करना।' और फिर कहते हैं—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल॥

राजा बलि ने जिस तरह जगत्-कल्याण का प्रण किया था—'वैसे ही तुम करो। वह महादानी था और महाबलवान् था और संकल्प से बाँधा गया। जिस संकल्प से वह बाँधा गया, जगत् की रक्षा के लिए, उसने सब कुछ बलिदान कर दिया। हे रक्षा, तू भी वही रक्षा मेरे भाई की कर।

हमारे चार सांस्कृतिक पर्व हैं जो सारे राष्ट्र में मनाये जाते हैं। उत्सव और चीज़ है, पर्व और चीज़ है। उत्सव

कहीं ज़्यादा कहीं कम होते हैं। पर हमारे चार पर्व रक्षा-बन्धन, दशहरा, दीवाली और होली, जिनको राष्ट्रीय पर्व कहा गया है, सारी हिन्दु जाति, आर्य जाति मनाती है। आर्य का अर्थ आर्यसमाजी नहीं होता। जर्मन भी आर्य हैं, रूस में भी आर्य हैं। शब्द आर्य नहीं है बल्कि आर्ष है। वास्तव में हमारी संस्कृति आर्ष संस्कृति है. ऋषियों की संस्कृति है। ऋषियों ने हमें यह संस्कृति दी है। ऋषि का मतलब सन्त होता है। हमारी इस संस्कृति के चलाने वाले सन्त, रक्षा करने वाले सन्त और मार्ग दिखाने वाले सन्त हैं। उनके द्वारा दिये गये ये चार पर्व मानव के चार अङ्ग हैं। मानव क्या है? मनुष्य अपने आप में पूर्ण है। उसके चार अङ्ग हैं—शरीर, मन, आत्मा और सुरत। यह आध्यात्मिक रहस्य हमारे ऋषियों ने हमें पहले ही बता दिया है। इसमें आत्मा को कारण-शरीर कहते हैं। बुद्धिमय, प्रकाशमय जो अहं, हमारी "मैं" आ जाती है, उसको आत्मा कहते हैं। पर चारों अंगों का सम्यक् विकास ज़रूरी है। शरीर अगर स्वस्थ न हो तो समाधि, ध्यान आदि नहीं लगा सकते। इसलिए शरीर का भी ध्यान रखना है। इसी तरह मन का स्वास्थ्य भी ज़रूरी है। अगर हमारा मन मलिन है, मन से हम दूसरों के दोष देखते हैं तो हमारा मन दोषी है। जो दूसरों के दोष देखता है, पहले तो उसने दोष का सुमिरन किया। दाता दयाल जी कहते हैं—"सुमिरन है रूप का।" इसलिए दोष देखने से, मन मलिन होने से, मनुष्य जिस लोक से आया है, वहाँ नहीं पहुँच सकता, न तो वह खुश रह सकता है। खुशी का एक ही तरीक़ा है —मस्त रहो, हर हाल में और अपने मन से किसी को बुरा न कहो, बुरा न सोचो। ऐसा करने से मन की ताक़त बढ़ती है। ज़बरदस्त ताक़त बढ़ती है, इसमें कोई शक नहीं।

मन के बाद है आत्मा। आत्मा का सम्बन्ध है प्रकाश से। आत्मा की उन्नति तभी होती है जब हम नैतिक नियमों पर चलते हैं। नैतिक नियमों पर चलते हुए किसी को नुकसान नहीं पहुँचाते :—

'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई,
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।

यह सब से बड़ा धर्म है। आत्मा का सम्बन्ध धर्म से है। सूरत का सम्बन्ध मोक्ष से है। वर्णव्यवस्था भी इन्हीं चारों अंगों पर आधारित थी। ऐसा नहीं था कि ब्राह्मण का बेटा ही ब्राह्मण होगा। आरम्भ में जब ऋषियों ने वर्ण-व्यवस्था दी, यह हमारे स्वभाव के मुताबिक थी। यदि कोई मनुष्य शरीर की तरफ और खाने-पीने में ही ज़्यादा ध्यान देता है और मन की ओर ध्यान नहीं देता, उसे 'शरीरधर्मा' कहते हैं। जो लोग 'खाओ-पीओ, मौज उड़ाओ' के सिद्धान्त पर चलते, मांस खाते, शराब पीते हैं, वे शूद्र हैं। चाहे वे ब्राह्मण के घर ही क्यों न पैदा हुए हों। शरीर तो नाशवान् है, क्षण-भंगुर है। शरीरधर्मा जल्दी मरता है। डाक्टरों और वैज्ञानिकों ने अब यह निश्चय कर दिया है कि शराब पीने और मांस खाने वालों को दिल की बीमारी गुर्दे, जिगर और आँतों की बीमारी के कारण जल्दी मरने के सब सामान इकट्ठा हो जाते हैं। कुछ लोग बहाना लेते हैं कि अमुक शराब पीते हैं और बूढ़े हो गये हैं। पर बूढ़े अगर शराब न पियें तो और भी ज़्यादा दिन जीयेंगे। शराब न पीने से लम्बी उमर होती है। कुदरत ने हमारे दाँत और आँत दोनों ही मांस खाने के मुआफिक नहीं बनाये हैं। लोग तर्क देते हैं कि मांस खाने से आदमी तगड़ा होता है। बिलकुल ग़लत बात है। शेर अगर मांसखोर है तो घासखोर हाथी उससे ज़्यादा तगड़ा होता है। शेर काहिल और गुस्सावर होता है। फिर कहते हैं—मांस में प्रोटीन होती है,

वो तो दूध में भी होती है। दूध सबसे पौष्टिक और बढ़िया है। मेरे ताऊ जी दूध पीते थे, शाकाहारी थे और ११५ साल जिये। मांसखोर लोग खुद पहले अपने जानवरों को घास और धान खिलाते हैं मोटा करने के लिए, फिर उसे ज़बह करते हैं खाने के लिए। अमेरिका में एक मस्सी होती है जो जानवरों को मोटा होने के लिए खिलाई जाती है। वो लोग दूध देने वाले जानवरों को मारते नहीं। गैरदुधारी जानवरों का मांस खाते हैं। वो कहते हैं कि जितनी प्रोटीन हमें धान से मिलती है, उसका चौथाई हिस्सा ही प्रोटीन मांस से मिलती है। फिर धान ही क्यों न खाया जाये ? अब मेडिकल साईंस के ज़रिये यह निश्चय हो चुका है कि कैंसर की बीमारी मांस-खोरों को ही ज़्यादा होती है। धान के खाने से कैंसर नहीं होता। जो बुद्धिजीवी सात्त्विक और शाकाहारी भोजन करते हैं उनकी उमर अधिक होती है। कहने का मतलब यह है कि जो शरीरधर्मा खाद्य-अखाद्य का ध्यान नहीं रखते, वे शूद्र हैं। कहा गया है—'जैसा अन्न, वैसा मन।' जो लोग इधर-उधर का भोजन खाते हैं उसका असर बुरा होता है; घर के अन्दर हमारी मां-बहनें अपने हाथ से जो भोजन प्रेम-पूर्वक बनाती हैं उससे बुरा प्रभाव खत्म हो जाता है और वह स्वास्थ्य-प्रद होता है। इसीलिये मैं बाहर का भोजन नहीं करता।

तो शरीरधर्मा शूद्र है, और मनोधर्मा वैश्य है। वैश्य वह है जो मन की शक्ति से काम करता है। वह मन से अधिक प्रभावित रहता है। 'मनोधर्मा वैश्यः'। इसके बाद बुद्धि और आत्मा से काम लेने वाले हैं। जो व्यक्ति धर्म पर चलता है, धर्म की रक्षा करता है, जो समाज और समाज के नियमों की रक्षा करता है वो 'बुद्धिधर्मा' है, उसे क्षत्रिय कहते हैं। और जो सबके कल्याण में ही

स्वाभाविक रूप से लगा हुआ है, जिसकी जगत्-कल्याण की प्रवृत्ति है, जो अपने शरीर और स्वार्थ की परवाह नहीं करता, उसमें साधु के लक्षण हैं, वह ब्राह्मण है।

तो शूद्र शरीर तक, वैश्य मन तक, क्षत्रिय बुद्धि तक और ब्राह्मण सुरत तक गति रखता है। ब्राह्मण वह है जो कल्याणकारी है। डाक्टर और प्रोफेसर भी ब्राह्मण हैं जो समाज-कल्याण करते हैं। ये हैं मनुष्य के चार अंग, चार वर्ण, चार पदार्थ और चार पुरुषार्थ।

चार पदार्थ अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष हैं। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अर्थ या धन चाहिए। महाराज जी कहते थे बच्चा पैदा होता है तो गुड़सत्त माँगता है। अर्थ हमारे जीवन का एक लक्ष्य है। यह नहीं कि कानों में उँगली डालकर बैठ रहे और घर की रोज़ी की चिन्ता न करे। (किसी माई की ओर संकेत करते हुए कहा—"मैं आपके लड़के को लिखूंगा कि आपका ध्यान रखे।") शरीर और धर्म का पालन करने के लिए धन की सबको आवश्यकता है। इसीलिये धन की प्रशंसा भी की गई है—'यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः, स एव वक्ता सच दर्शनीयः।' ऋषियों ने भी कहा है। अर्थात् धन ही आपको सहायता दे सकता है। हमारी संस्कृति ने धन की इतनी प्रशंसा की कि लक्ष्मी को ही भगवान् के समकक्ष बिठा दिया। और किसी धर्म में ऐसा नहीं किया। धन अपने आप में बुरा नहीं। जो धन पा कर उसे दान करता है, उसे धन मिलता है। दान देना बहुत ज़रूरी है। जो धन का उपयोग करता है वह दूसरे दर्ज़े पर जायेगा। उसका मन सन्तुष्ट होगा। मन की तुष्टि के लिए है काम। काम का मतलब कामनाओं की पूर्ति करना :

'काम-काम सब कोई कहें, काम न चीन्हे कोय।
जेती मन की कामना, काम कहावे सोय॥'

जिसकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती, उसका मन दुःखी रहता है। देखो, ब्रह्मचर्य आश्रम अर्थोपार्जन की योग्यता प्राप्त करने के लिए है। गृहस्थ आश्रम है मनोकामनाओं की पूर्ति करने के लिए। महाराज जी कहते थे—"सन्तान को सन्तान के विचार से पैदा करो, खुदरौ औलाद दुःख का कारण बनती है।" जो इस नियम का पालन नहीं करता, उसका मन दुःखी रहता है। ऋषियों ने काम को प्रेम में बदल दिया, क्योंकि काम को जब प्रेम में बदल दिया जायेगा—मातृ-प्रेम, पत्नी-प्रेम, सन्तान-प्रेम, बन्धु-प्रेम और फिर समाज-प्रेम—तब काम, काम नहीं रह जायेगा। वह प्रेम मालिक की भक्ति बन जाता है। इसके बाद फिर धर्म। धर्म है अपनी आत्मा का ध्यान। जिसको अन्दर का प्रकाश नहीं दिखाई देता, वह धर्मात्मा बन जाये; परोपकार करना शुरू कर दे, अपने आप उसका प्रकाश खुल जायेगा। इसके बाद मोक्ष का मतलब है सुरत को मालिक में मिलाना। यह है चौथा पद। यह हमारे चार अंग, चार वर्ण, चार पदार्थ, चार पुरुषार्थ और चार हमारे पर्व हैं—रक्षा-बन्धन, दशहरा, दीपावली और होली।

आज रक्षा-बन्धन है। इसके पीछे बड़ा अच्छा विचार है, समझने की बात है। अगर कोई यह कहे कि पोथी-पत्रा और तिलकधारी ब्राह्मण को ही इसका अधिकार है, यह ग़लत है। आज के दिन हर एक आदमी रक्षा-बन्धन बाँधने का अधिकारी है। चाहे वह ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो या शूद्र हो। क्योंकि हर एक मनुष्य में चारों आश्रम और वर्ण का अंश मौजूद है। हरएक आदमी इस दृष्टि से ब्राह्मण भी है, क्षत्रिय भी है, वैश्य और शूद्र भी है। चारों ही में मालिक का अंश सुरत तो मौजूद है ही। रक्षा-बन्धन पर्व यह बताता है कि किसी जाति या वर्ण का क्यों न हो, वह

ब्राह्मण है। रक्षा-बन्धन के दिन हरएक को प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि मैं जगत्-कल्याण का काम करूंगा। रक्षा-बन्धन का यह महत्त्व है। यह सन्तमत का त्यौहार है। आज हमने इसी का प्रण किया है कि हम साधु-वृत्ति धारण कर जगत्-कल्याण करेंगे। यह सिद्ध करता है कि सभी मनुष्य पूर्ण हैं।

इसके बाद दशहरा आता है जो हमारी आत्मा और धर्म के साथ सम्बन्ध रखता है। दशहरे के दिन राम ने क्या किया? राम ने धर्म की रक्षा और लोक-कल्याण के के लिये रावण को मारा। इस दिन बच्चे, बूढ़े सब तीर-धनुष लेकर रावण को मारने चल पड़ते हैं। यह बताता है आप सभी क्षत्रिय भी हो। वास्तव में हमारी संस्कृति बताती है कि वर्णव्यवस्था और जाति-विभाजन ऊपरी चीज़ नहीं है, बल्कि यह आन्तरिक है। और क्षात्र-धर्म, सब का धर्म है।

इसके बाद दीपावली आती है। यों तो इसे वैश्य ज़्यादा मानते हैं क्योंकि यह लक्ष्मी का पर्व है। पर कौन ऐसा है जिसे लक्ष्मी या पैसे की ज़रूरत नहीं है? सब को है। पर इसके साथ एक बुरी प्रथा चल पड़ी है जुआ खेलने की। कहते हैं—इस दिन जो जुआ नहीं खेलता उसे गधे का जन्म मिलता है और जुआ खेल कर यह देखते हैं कि हमारे घर लक्ष्मी आयेगी या नहीं! वैसे तो युधिष्ठिर महाराज ने भी जुआ खेला, और यह जीवन भी एक जुआ ही है। लेकिन वास्तव में दीपावली मनोधर्मा और वैश्य-वृत्ति है। जिनका मन स्वच्छ-सुथरा होता है वे दीपावली में सफाई-सजावट करते हैं। दीपावली यह बताती है कि हरएक आदमी वैश्य है, क्षत्रिय है और ब्राह्मण भी है।

और होली हमारा महापर्व है। दीपावली वैश्यों की,

दशहरा क्षत्रियों का, रक्षा-बन्धन ब्राह्मणों का और होली महापर्व है। इस दिन सभी जातियों के लोग आपस में प्रेम से मिलते हैं, और रंग खेलते हैं। होली में सफेद वस्त्र पर लाल, पीला, हरा सभी रंग मिलजुल कर एक हो जाते हैं। भंगी, चमार, ऊँच-नीच सब एक दूसरे को आलिंगन करते हैं। कोई भेद-भाव नहीं। यह मानवता का पर्व है जो हमें यह बताता है कि मानव-मानव में कोई भेद नहीं है, न वर्ण के आधार पर न जाति के आधार पर। हमारे ये चार पर्व हमें यह बताते हैं कि हम सब शूद्र भी हैं, वैश्य भी हैं, क्षत्रिय भी हैं और ब्राह्मण भी हैं।

अब रही बात रक्षा की, सो असली रक्षक तो हमारा मालिक है। जब हम अपने आप को सद्गुरु के सुपुर्द करते हैं, सत्पुरुष के सम्पर्क में आते हैं और उसी को अपना अच्छा-बुरा सर्वस्व अर्पित करते हैं—'कर अब सम्हाल मेरी, मेरा सम्हाल है तू।' आज यह शब्द पढ़ा गया। जो ऐसा अमल करते हैं वही वास्तव में रक्षा-बन्धन के सच्चे मार्ग पर चलते हैं। उसकी रक्षा तो तब होगी जब मालिक दाता दयाल को कह दो :—

'कर अब सम्हाल मेरी, मेरा सम्हाल है तू।'

यह एक बहुत बड़ा क़दम है, गो है तो एक ही क़दम :-

'गुरु तारेंगे हम जानी, तू सुरत काहे बौरानी।'

स्वामी जी के इस एक ही शब्द को दिल से समझ लेने से सब रक्षा होती है। सच यह है गुरु तो तार रहे हैं, तरने वाले ही कम आते हैं। गुरु तो अपने सत्संग के अन्दर सच्चा ज्ञान देकर जीवों को बराबर तार रहे हैं। सत्संग में आपकी आत्मा को निखार रहे हैं। सद्गुरु का काम है सत्संग में एक ऐसा समीरण प्रवाहित करना, मन्द-मन्द हवा का समा रचना, जिसमें सुरत की कलियाँ सद्गुरु के वचन-वाणी

रूपी समीरण के स्पर्श से गुलाब के फूल की शक्ल में पूर्ण रूप से खिल उठें। आप सब कलियाँ हैं, गुरु का सत्संग वह समीरण है जो गुलाब के फूल की तरह खिला देता है। न इसमें परिश्रम की ज़रूरत है, न पढ़ने-लिखने की, न वाद-विवाद की। वाद-विवाद तो बिलकुल ग़लत है. एक मात्र सद्गुरु के शरण में आने की ज़रूरत है।—

'गुरु तारेंगे हम ज्ञानी, तू सुरत काहे बौरानी।'

जो गुरु को पहचान चुका है, जो अपने आपको गुरु के समर्पित कर चुका है, जिस दिन से समर्पित किया है, उस दिन से 'सुरत न अनत चली री'। लेकिन यह निश्चय आपको करना है। आपको अपना आपा गुरु के सुपुर्द (समर्पण) करना है।

डा० सरदारी लाल नन्दा जितने दिनों महाराज जी के निकट रहे, अगर अपने आपको उनका शिष्य मानते तो कहीं के कहीं पहुँच जाते। वो कहते हैं—"महाराज जी बीमार थे, मैं उन्हें Examin कर रहा था, तो उनसे पूछा —आप अपने जीवन का मर्म मुझे कुछ बता दीजिये।" उन्होंने बनियागिरी की। लेकिन बात उनकी समझ में नहीं आई। महाराज जी तो ऐक्टिंग कर रहे थे। सन्त जब चाहे अपने आप को ठीक कर सकता है। उन्होंने डा० नन्दा को कहा, "भाई सरदारी लाल, बात तो सिर्फ़ इतनी है कि न किसी साधन की ज़रूरत है, न किसी परिश्रम की। ज़रूरत सिर्फ़ इतनी ही है कि शरणागत हो जाओ।" महाराज जी कहा करते थे—"मैं अपने आपको सुपुर्द करता रहता हूँ।" शरणागत तो खुद ही होना पड़ता है। कोई दूसरा आ कर आपको शरणागत नहीं करावेगा। सेवा आप खुद करो तो होगी। किसी के कहने पर सेवा करने का कोई लाभ नहीं। केवल शरणागत होना ही हमारे इख़्तियार की बात है,

क्योंकि हम परमतत्त्व के अंश हैं। इसका यही सबूत है कि हम चाहे शरणागत हों या न हों हमारी मर्जी। महाराज जी क्या कहते थे ? "मेरे पास आओ, न आओ, तुम्हारी मर्जी। आओगे तो लाभ होगा, नहीं आओगे नहीं होगा।" तो 'गुरु तारेंगे हम जानी।' क्या जानी ? जानने का मतलब है कि हमने अन्दर में उसका अनुभव कर लिया। हम अपने आपको शरीर नहीं मानते। शरीर भी वही चलायेगा, मन भी वही चलायेगा। जिसने उसे पहचान लिया, मान लिया, वह सुरक्षित हो गया। मैं तो उसी दिन सुरक्षित हो गया जिस दिन महाराज जी के पास गया था। ज़्यादा कुछ करने की ज़रूरत भी नहीं हुई। न आपको करने-धरने की ज़रूरत है। उसके रास्ते पर चलते जाओ-चलते जाओ। एक दिन गुरु खुद कह देगा—"जाओ तुम्हें सब कुछ दे दिया गया।" उसने अभय दान दे दिया। कुछ करने-धरने की ज़रूरत नहीं। यह है शरणागत। एक मस्ती—इतना कहते ही मस्ती अपने आप आती है, मेरी आँखों को देखो। यह चीज़ आपके अन्दर आ जायेगी। इसी चीज़ को बाँटने के लिए यह शरीर चल रहा है। यह न चले तो क्या ! लोग पचास साल में भी मर जाते हैं। हम तो पैंसठ साल के हो गये हैं, क्या हर्ज़ है ? आख़िर तो चलना ही है। तो :—

'गुरु तारेंगे हम जानी'

मैं आपको अपना अनुभव बता रहा हूँ। अपने आपको शाहज़ादा कहने वाले व्यास जी ने मुझ बड़े तार दिये, चिट्ठियाँ लिखीं। वह लिखते हैं—'आपको पता नहीं, यहाँ पर आपके पास चोर आयेंगे, उचक्के आयेंगे, डाकू भी आयेंगे, कत्ल करने वाले, बन्दूक चलाने वाले आयेंगे, आपके ग्रह ऐसे हैं।' क्योंकि उनका अपना मन मलिन था। मैं जब यहाँ स्टेशन पर उतरा, मेरे दिल ने यही शब्द कहा—'गुरु

तारेंगे हम जानी।' गुरु आपकी रक्षा करने को हरदम तैयार है। आप एक क़दम तो चलो। यह तो एक ऐसा काम था जिसे होना ही था। महाराज जी को कौन रोक सकता है? कोई नहीं रोक सकता। जो रोकने की कोशिश करेगा, खत्म हो जायेगा। मैं बड़ा हैरान होता हूँ। कल एक चिट्ठी आई जिसमें लिखा है—'मैं महाराज जी के पास जाया करता था और वह हमेशा हमारा संकट दूर करते थे और महाराज जी ने तो कहा था, "मेरे बाद जो आयेगा, मेरे से हज़ार-गुना अधिक ताक़त लेकर आयेगा।" ताक़त तो सब उसी की है, और सब कुछ अपने आप हो गया। हाँ, यह बात ठीक है कि स्वार्थ का लेशमात्र भी सवाल नहीं है। मालिक का काम सब इतने सुन्दर ढंग से हो गया। जिनको रहना था रहे, जिनको जाना था गये। रक्षा करने वाला तो मालिक है, तुम अपने आपको उनके सुपुर्द तो करो! यह बड़ी ऊँची बात है जो मैं अपने अनुभव से कह रहा हूँ :—

'कश्ती खुदा पे छोड़ दे, लंगर को तोड़ दे।'
'गुरु तारेंगे हम जानी, तू सुरत काहे बौरानी।'

शुद्धि-पत्र

सितम्बर के मानव मन्दिर के पृष्ठ 16 पर सत्संग की तारीख 9-2-1983 के बजाय 9-2-1973 पढ़ें।

नोट :—जो आदमी बराबर काम में लगा रहता है वह ईश्वर का साथी है, बेकार आदमी के साथ शैतान रहता है। यह नुक़ता सोने के पानी से लिखे जाने के क़ाबिल है।

—दाता दयाल

मासिक सन्देश

परमसन्त हजूर मानव दयाल

डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरे परम प्रिय सत्संगियो,

राधास्वामी, परमदयाल जी सहाई !

मानवता मन्दिर में २ जुलाई १९८५ को गुरुपूर्णिमा मनाई गई। दूर-२ से आये हुए सत्संगियों ने इसमें भाग लिया। यहाँ उन पाठकों के लिए गुरुपूर्णिमा का महत्त्व बताना आवश्यक है जो सनातन धर्म की परम्परा से परिचय नहीं रखते। वास्तव में भारतीय संस्कृति में हरएक पूर्णिमा को पवित्र-पावन माना जाता है। इस सनातन परम्परा का आधार वेद, उपनिषद्, पुराण और भगवद्गीता हैं। बहुत लोग इस दिन व्रत रखते हैं और सायंकाल भोजन करने से पहले ईश्वर की पूजा करते हैं।

वास्तव में आत्मानुभूति और आत्मशुद्धि एवं जीवन्मुक्ति प्राप्त करने के लिए दो मार्ग बताये गये हैं। वास्तव में हरएक व्यक्ति में पूर्णता का वह अंश है जो उसे परमतत्त्व से मिलाता है। वास्तव में मानव अपने आप में सच्चिदानन्द स्वरूप है। किन्तु उसकी यह छिपी हुई शक्ति उसे इसलिए दिखाई नहीं देती क्योंकि उसकी आत्मा पर अनेक जन्मों के कर्मों का बोझ लदा हुआ है और मनुष्य का भौतिक तथा

मानसिक जगत् को वास्तविक मानने का भ्रम भी उसके इसी अज्ञान तथा कर्मों के बोझ के कारण है। अनन्त मानव का जगत् में सीमित हो जाना एक प्रकार की ऐसी क़ैद है जो उसने खुद ही अपने आप पर थोपी है और जिससे मुक्त होकर उसे पूर्णता प्राप्त करनी चाहिए। सभी कर्मों को समाप्त करने का तरीक़ा यह है कि मनुष्य कर्मों को भोगता हुआ, आशावादी होकर यह विश्वास रखे कि उसके जीवन में जो कुछ भी घटित हो रहा है, वह अन्त में लाभ-दायक सिद्ध होगा, हालाँकि उन घटनाओं के अनुभव के समय मनुष्य को ऐसा लगता है कि उसके साथ अन्याय हुआ है और उसे हानि पहुँची है। इसीलिए मैं अक्सर कहा करता हूँ कि "अगर तुम किसी मुसीबत को दो साल तक लगातार सहन कर लो, तो वह वरदान बन जाती है।" सद्गुरु स्वभाव से ही यह जानता है कि वह अपने शिष्य को किस प्रकार बिना किसी दुःख के अच्छे और बुरे कर्मों को भोगने का रास्ता दिखाये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सुरत-शब्द योग का अभ्यास आत्मा को शब्दब्रह्म से मिला देता है। शब्दब्रह्म ही परमसत्ता के निकटतम है। इस अभ्यास से सत्संगी जीवन के सुख-दुःख, लाभ-हानि, निन्दा-स्तुति और जीवन-मरण के द्वन्द्वों से ऊपर उठ जाता है।

किन्तु इस अवस्था को पाने के लिए सुरत-शब्द योग का अभ्यास मात्र ही काफ़ी नहीं है। कर्मों को आशावादी रहते हुए इस प्रकार भोगना चाहिए कि मन पवित्र हो जाये और इसी कारण सुरत-शब्द योग के अभ्यास से शान्ति मिल जाये। इस आत्मशुद्धि के बिना किसी किस्म का अभ्यास भी हानिकारक बन जायेगा। इसलिए हर समय सद्गुरु के मार्ग-दर्शन की ज़रूरत रहती है। सद्गुरु सत्संगी को सुरत-शब्द योग पर चलाने से पहले खास किस्म की

सेवा करने का आदेश देता है। इस बात को पिछले मासिक सन्देश में उदाहरण के साथ बतलाया गया था। सुरत-शब्द योग के अभ्यास के लिए वह एक ज़रूरी क़दम है और इस कारण ईश्वरानुभूति के सभी योगों के मुकाबले में सुरत-शब्द योग सब से अच्छा है। इस पूर्णमासी के योग में यह ज़रूरी नहीं कि मनुष्य दुनिया की इच्छाओं और व्यवहार को त्याग दे बल्कि यह इस बात पर ज़ोर देता है कि मनुष्य को आशावादी जीवन बिताते हुए दुनिया के सभी सुखों को बिना राग और लाग-लपेट के भोगना चाहिए।

एक संन्यासी भी इस भ्रम में रहता है कि उसने घर-बार छोड़ कर जंगल में रहते हुए सभी इच्छाओं को त्याग दिया है। उसका यह कहना ही कि एकान्त का जीवन दुनियावी जीवन के मुकाबले अच्छा है, इस बात को ज़ाहिर करता है कि वह संन्यास के जीवन के प्रति राग और मोह रखता है और उसे यह मिथ्या भ्रम या अभिमान है कि उसने मुक्ति के रास्ते की सभी रुकावटों को दूर कर दिया है। संन्यास का यह निषेधात्मक अमावस्या, अन्धकार और शून्यता का रास्ता भिन्न है। और यह रास्ता भी कर्मों से स्वतन्त्र होने के लिए ही अपनाया जाता है। सच तो यह है कि सच्चा त्याग निष्काम कर्मयोग का वह दृष्टिकोण है जिसके ज़रिये व्यक्ति व्यावहारिक जीवन में रहता हुआ कर्म के फल से मोह नहीं रखता। सन्तों और सद्गुरुओं ने पूर्णमासी का आशावादी रास्ता गृहस्थों के लिए ख़ास तौर से इसलिए बताया है कि वह सरल और सहज है।

यह मार्ग मध्य-मार्ग है जिसमें इच्छाओं को ऐसा मोड़ दिया जाता है कि मनुष्य की मानवता और उसकी पूर्णता समरूप हो जाती हैं। इसके फल-स्वरूप दुनिया की इच्छाएँ (राधा) और आध्यात्मिक पूर्णता (स्वामी) एक-दूसरे में ऐसे

ओत-प्रोत हो जाते हैं कि व्यावहारिक जीवन सहज हो जाता है। इसमें अपने आपको दुःख देकर इच्छाओं को दबाने का विधान नहीं है, ना ही शरीर और मन को कष्ट देने की शिक्षा दी जाती है, और ना ही इसमें सभी भावनाओं और कामनाओं को पशु की भाँति तृप्त करके "खाओ-पिओ और मौज उड़ाओ" के सिद्धान्त पर चलने का परामर्श दिया जाता है। इस मार्ग में ऐसी बात नहीं है कि व्यक्ति या पूरी तरह त्यागी-संन्यासी ही बन जाये या फिर पशुओं की तरह अपने संवेगों को निरंकुश रूप से तृप्त करने में ही डूब जाये। संक्षेप में, इस मार्ग में न तो इच्छाओं को पूरी तरह दमन करने का प्रतिबन्ध है और न उन्हें पूरी छूट दे देने की आज़ादी, बल्कि इस मार्ग में इच्छाओं, प्रेरणाओं और संवेगों को समरूपता प्रदान करने का विधान है।

भगवद्गीता, गुरु और शिष्य के बीच संवाद का सब से प्राचीन प्रमाणित उदाहरण है। सद्गुरु कृष्ण ने अपने सत्संगी अर्जुन को भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के ७०वें श्लोक में कहा है, "जिस प्रकार समुद्र चारों ओर से बाढ़ में आई हुई नदियों को अपने आप में समेटता हुआ बिना क्षोभ के, शान्त रहता है, उसी प्रकार शान्ति भी उसी व्यक्ति को मिलती है जो अपनी सभी इच्छाओं, संवेगों और प्रेरणाओं को समरूप बना कर, बिना मानसिक क्षोभ के, अपने आप में समेट लेता है, ना कि उस व्यक्ति को जो बुरी तरह से इच्छाओं के पीछे दौड़ता है।"

सुरत-शब्द योग दूसरे सभी प्रकार के योगों से इस दृष्टि से न्यारा है कि इसके जरिये साधक धीरे-धीरे और सहज में ही ऊपर बताई गई अवस्था या हालत को पा जाता है। इस योग की खूबी यह है कि यह छठे चक्र (तीसरे नेत्र) या आज्ञाचक्र से ध्यान शुरू करता है, जो

नीचे के पाँच शारीरिक चक्रों से ऊपर है। शरीर में सब से नीचे का पहला चक्र मूलाधार कहलाता है जो हमारी सुषुम्ना में रीढ़ की हड्डी के आधार में मौजूद है। यह चक्र या केन्द्र गुदाचक्र भी कहलाता है और पृथ्वीतत्त्व का धनी है। पृथ्वी का देवता गणेश है। हठयोगी या राजयोगी अपनी साधना इस चक्र से शुरू करते हैं। ध्यान रहे कि इस साधना में भी उस बीजमन्त्र या गुप्त शब्द पर ध्यान लगाया जाता है जो इसे प्रेरित कर सकता है। यह बीज-मन्त्र, "लं-लं-लं है"। अगर कोई साधक मन में इस शब्द का सुमिरन करते हुए ध्यान लगाये तो वह पृथ्वीतत्त्व का धनी हो जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि वह समाधि की अवस्था में पृथ्वी से ऊपर उठ कर हवा में रह सकता है। शरीर या पिण्ड का दूसरा केन्द्र या चक्र जल-तत्त्व से सम्बन्ध रखता है। इस चक्र को स्वाधिष्ठानचक्र भी कहा जाता है। यह चक्र प्रजननेन्द्रिय के निकट होता है। यह सृष्टि का केन्द्र है, इसका धनी ब्रह्मा देवता है। जब कोई साधक बीजमन्त्र "वं-वं-वं" का सुमिरन करते हुए ध्यान लगाता है तो वह जलतत्त्व का धनी हो जाता है। वह जल पर चल सकता है। तीसरा केन्द्र अग्नि का केन्द्र, नाभि में मौजूद है। इसे मणिपुरचक्र कहते हैं। इसका धनी विष्णु देवता है। जो योगी बीजमन्त्र, "रं-रं-रं" का सुमिरन करते हुए ध्यान लगाता है, वह अपने सूक्ष्म शरीर से सूर्यलोक तक पहुँच सकता है। शरीर का चौथा केन्द्र या चक्र वायु से सम्बन्ध रखता है और उसका स्थान हृदय है। इसे अनाहत चक्र कहा जाता है, क्योंकि यहाँ लगातार शब्द होता रहता है। इस चक्र के देवता भगवान् शिव हैं। जो योगी बीजमन्त्र, "यं-यं-यं" का सुमिरन करते हुए इस चक्र पर ध्यान लगाता है, वह इस केन्द्र का धनी हो

जाता है। उसकी गति आकाशगंगा तक होती है। शरीर का पाँचवाँ चक्र कण्ठ है और उसे विशुद्धचक्र कहा जाता है। इसका सम्बन्ध आकाश से है। इस चक्र पर दैवी शक्ति राज्य करती है। जो योगी बीजमन्त्र, "हं-हं-हं" का सुमिरन करते हुए इस चक्र पर ध्यान लगाता है, वह आकाश का धनी हो जाता है।

सुरत-शब्द योग इससे एक क़दम आगे शुरू होता है। इसमें साधक को छठे केन्द्र आज्ञाचक्र, अर्थात् तीसरे नेत्र से चलाया जाता है। इस योग की व्याख्या अगले मासिक सन्देश में की जायेगी। किन्तु इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुरत-शब्द योग आशावादी है और पूर्णमासी का मार्ग है, जब कि संन्यास और तपस्या का मार्ग अमावस्या का मार्ग है। क्योंकि इस सम्बन्ध में अगले मासिक सन्देश में पूरी-पूरी तशरीह की जायेगी, इसलिए मैं आपको मानवता मन्दिर की गति-विधि के बारे में कुछ सूचना देना चाहूंगा।

मैंने गुरुपूर्णिमा के बारे में पहले ही कह दिया है। जुलाई और अगस्त के महीने में मैं ज्यादातर होशियारपुर में ही रहा। दैनिक, साप्ताहिक और मासिक सत्संग पहले की तरह होते रहे। मानवता मन्दिर उन लोगों के लिए एक आकर्षण-केन्द्र है जो मन की शान्ति चाहते हैं। इन दो महीनों के बीच कुछ जिज्ञासु बाहर से आये और मेरी उपस्थिति में काफी दिन यहाँ ठहरे। कोई भी व्यक्ति जो मानवता मन्दिर में ठहरना चाहता हो, पहले मेरे व्यक्तिगत (निजी) सेक्रेटरी श्री एस. एल. सेठी (Shri S. L.Sethi) से पत्राचार करे। उनका पता—मानवता मन्दिर, सुतेहरी रोड, होशियारपुर है। होशियारपुर से बाहर का मेरा दौरा सितम्बर के पहले सप्ताह में शुरू होगा। इस दौरे की पूरी

सूचना अगले मासिक सन्देश में दी जायेगी।

इस सूचना के साथ ही मैं आपको सद्भावना देता हूँ कि आप सब स्वस्थ हों, समृद्धिशाली हों, तथा शान्ति और पूर्णता प्राप्त करें। आप सब को इस महीने का मेरा दिली आशीर्वाद कौर राधास्वामी !

आपका फ़कीरमय

मानव

अत्यन्त आवश्यक सूचना

अत्यन्त गौरव से सभी सत्संगियों को सूचित किया जाता है कि परमसन्त मानव दयाल डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज को आल इण्डिया फिलोसॉफीकल कान्फ्रेंस के हीरक जयन्ती (साठवें) सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए सर्व-सम्मति से निर्वाचित किया गया है। इस सम्मेलन का यह सत्र केन्द्रीय हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश) में १९ दिसम्बर से २३ दिसम्बर १९८५ तक आयोजित होगा। हुजूर मानव दयाल जी महाराज द्वारा दिया गया अध्यक्षीय भाषण अंग्रेजी जानने वाले सत्संगियों को इस सम्मेलन के पश्चात् भेजा जायेगा। इस सम्मेलन में विश्व भर के दार्शनिक भाग लेंगे।

नारायण दास डोगरा
जनरल सेक्रेटरी

पत्र द्वारा ज्ञान

परम सन्त हजूर मानव दयाल जी महाराज का श्री कृष्ण मोहन तिवारी लखनऊ को लिखा गया पत्र 15-8-85

मेरे अपने ही अंश और आत्मज कृष्ण

राधास्वामी, परमदयाल जी सहाई !

तुम्हारा ४ अगस्त का ११ बजे रात्रि का लिखा हुआ प्रेम, श्रद्धा और भक्ति से ओत-प्रोत पत्र मिला। वास्तव में तुम्हारे लिए सामान्यतया पत्र-व्यवहार की आवश्यकता नहीं। तुम्हारी तड़प, सच्ची लगन और सतत मेरे उस रूप का सुमिरन जो वास्तव में तुम्हारे ही निजरूप का सुमिरन है प्रतिदिन हर घड़ी और हर पल मेरे पास पहुँचता रहता है। केवल यहाँ ही नहीं बल्कि अमेरिका में भी तुम्हारी यह भावनाएं निरन्तर महसूस होती रहती थीं। मुझे ऐसा लगता है कि शायद मैंने तुम्हें अमेरिका से या यहाँ आने के बाद पत्र लिखा है। यदि भौतिक दृष्टि से ऐसा नहीं भी हुआ, मेरी इस धारणा का साक्षात् प्रभाव तुम्हारा प्यारा पत्र है। तुम्हारी सान्निध्य की अनुभूति निश्चित रूप में साक्षात्कार में परिवर्तित होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। ७ और ८ सितम्बर को सलवान पब्लिक स्कूल ओल्ड राजेन्द्र नगर नई दिल्ली में जन्माष्टमी पर सत्संग दे रहा हूँ। यदि कठिनाई न हो तो वहाँ आ जाओ। तीन-चार दिन और भी अगर हो सके तो मेरे साथ रहना। किन्तु अगर व्यापार में बाधा पड़ती हो तो ऐसा मत करना। कम से कम दो दिन आने का प्रयास करना क्योंकि कृष्ण जन्माष्टमी है और तुम जीते-जागते कृष्ण हो।

तुम्हारे पत्र में व्यक्त सभी भावनाओं उद्‌गारों, और अकांक्षाओं का मरा हाँ में वो उत्तर है जो मैं तुम्हें पहले दे चुका हूँ। तुम मेरे में विलीन हो चुके हो और तुम्हारे साथ ही वह सभी निकटवर्ती सत्संगी भी विलीन हो चुके हैं जो तुम्हारे कमरे में उस प्रातः को सत्संग सुन रहे थे और जिनका अनायास ही अश्रुपात हुआ था। ये हो सकता है कि उस विलीनीकरण का क्षणिक अनुभव तो तुमको और दूसरों को याद होगा किन्तु उसी कारण भविष्य के स्थायी विलीनीकरण की अभिव्यक्ति में सम्भवतया अपने-२ कर्मों के अनुसार सभी को अपने-२ समय पर ही साक्षात्‌कार होगा। किन्तु इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि तुम्हें और उन सभी उपस्थित श्रद्धायुक्त, भक्तियुक्त अनुभवकर्ताओं को अभयदान मिल चुका है। इस अभयदान का साक्षात्‌कार तभी होगा जब उस अवसर की स्मृति बनाये रखने के साथ-२ नेकनीयती से मन को पवित्र करने का प्रयास और सतत प्रेम बना रहेगा। मैं यह इसलिए लिख रहा हूँ कि इस अनुभव के बाद भी संकल्प की स्वतन्त्रता के कारण और मन में शंका बनाये रखने के कारण परमभक्त भी विभक्त होकर आवागमन के चक्कर में भटकता रह सकता है। मैं इस पत्र में जो कुछ भी लिख रहा हूँ वह उस परम अवस्था के गहन स्रोत से विनिःसृत हो रहा है जिसमें गोता लगाकर सन्त, परमसन्त, परमभक्त, अलख, अगम, अनामी अथाह कहते हुए अन्त में मूक और शान्त हो जाते हैं। मेरी ओर से तो यह अिलीनीकरण परिपक्व और परिपूर्ण है। अब तुम्हारी बारी है, तुम्हारा पत्र तो इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि तुम अभी तक मायायुक्त परीक्षा में उत्तीर्ण होते चले आये हो और भविष्य में भी इसी प्रकार सफल होते रहोगे। मैं चाहता हूँ कि तुम इस पत्र की फोटोस्टैट प्रतियाँ बनाकर शब्दानन्द

जी को, जजसाहब को, अपने पिता जी को और साधना को भेज दो ताकि उनकी आत्मा की परीक्षा के फल का यह प्रमाण-पत्र एक आध्यात्मिक चिन्ह के रूप में उनके साथ रहे और उन्हें चेतावनी देता रहे। आपको, आपके घर वालों को सभी सत्संगियों को दिली आशीर्वाद और राधास्वामी!

आपका फ़कीरमय

मानव

परमसन्त हजूर मानव दयाल जी महाराज का सुदर्शन कुमार, नई मण्डी सिरसा, को लिखा गया पत्र, 15-8-85

मेरे परमप्रिय बेटे सुदर्शन,

राधास्वामी, परमदयाल जी सहाई!

तुम्हारा ४ अगस्त का प्यारा पत्र मिला। तुम्हारी अवस्था शरणागत की अवस्था है और यह बहुत ही उत्तम अवस्था मानी जानी चाहिए। तुम्हारे पूर्वजन्म के संस्कार और तुम्हारा इस जन्म में परमदयाल जी के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध निश्चित रूप से इस बात को स्पष्ट करता है कि तुम इसी जीवन में अपने निजरूप को जानकर, पहचान कर जीव-न्मुक्त अवस्था को पाकर अन्त में विदेहमुक्ति को अनुभव करते हुए निजधाम को प्राप्त करोगे। तुम्हारे भाव और कवितावद्ध उद्‌गार तुम्हारी आत्मा का निरन्तर प्रवाह है। तुम्हारे पत्र से यह स्पष्ट होता है कि तुम्हारी श्रद्धा में कोई कमी नहीं है। इसी श्रद्धा और भक्ति का स्वाभाविक परिणाम उस ज्ञान की अनुभूति है जो तुम्हें इष्ट से अलग नहीं होने देता और जो तुम्ह इष्ट के असली रूप का सच्चा ज्ञान दे रहा है।

तुम मेरे से यानि कि मेरे निजरूप से भिन्न नहीं हो और न कभी पहले इससे भिन्न थे। किन्तु यह अभिन्नता

उस स्वपित कुण्डलिनी शक्ति की तरह अव्यक्त रूप से तुम्हारे अन्दर मौजूद थी जिसको प्रेरित करने के लिए योगी अष्टांग मार्ग का अनुसरण करते हुए और प्राणायाम आदि कठिन उपायों से गुज़रते हुए वर्षों तक प्रयास करते रहते हैं। किन्तु सन्तमत में एवं मानवता धर्म में केवल सत्संग से ही वह स्वपित शक्ति एवं परमतत्त्व की क्षमता सहज में उस समय व्यक्त और अभिव्यक्त हो जाती है जब सत्संगी शरणागत की हालत में हो जाता है। तुम्हें अभयदान मिल चुका है और तुम हमेशा आशावादी रहते हुए स्वस्थ और सचेत रह सकते हो। मुझे आशा है कि इस पत्र के पढ़ने से तुम अपने आप में पूर्णता का अनुभव करने लगोगे। तुम्हें और तुम्हारे घर वालों को दिली आशीर्वाद और राधास्वामी!

आपका फ़कीरमय

मेरी प्यारी श्रद्धालु बेटी कान्ता, २०-९-८५

राधास्वामी, परमदयाल जी सहाई!

तुम्हारा १९ सितम्बर का पत्र मिला। यह बहुत ही अच्छा हुआ कि तम्हें मेरा पत्र तुम्हारी ज़रूरत के समय ही मिला और उससे तुम्हें सच्चा मार्गदर्शन मिलता रहेगा। जब महाराज जी यह कहा करते थे कि मैं किसी के अन्दर नहीं जाता तो उनके कहने का मतलब यह था कि जो रूप आपके विश्वास से प्रकट होता है और आपको सहायता देता है वह परमदयाल जी महाराज का असली रूप नहीं है बल्कि उसका फैलाव है। परमदयाल जी का असली रूप तो रंग-रूप से परे है जैसे कि परमतत्त्व का, राधास्वामी दयाल का असली रूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव से परे है। इसका मतलब यह नहीं कि ब्रह्मा का वह ब्रह्माण्ड जिसमें करोड़ों सूर्य, आकाश, गंगाएँ विश्व हैं, अस्तित्व ही

नहीं रखता उसका होना सत्य है, वह ईश्वर या परमतत्त्व का स्थूल रूप है। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड को चलाने वाला विष्णु का रूप ब्रह्माण्डी मन है। उसी से ही सत्संगियों को गुरु का रूप निर्मित होकर सहायता देता है। क्योंकि परम-दयाल जी महाराज शरीर, मन और आत्मा यानि कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव के दर्जों से ऊपर निजरूप में रहते थे इसलिए उन्हें यह कहना पड़ता था कि वह कहीं नहीं जाते। इसका मतलब यह नहीं कि जो रूप तुमने अपने विश्वास के कारण देखा और जिसने तुम्हारी सहायता की वह था ही नहीं। वास्तव में वह रूप था और आगे भी वह प्रकट होता रहेगा। बशर्ते कि तुम्हारा विश्वास दृढ़ हो और तुम्हारी नीयत साफ़ हो। सत्संगियों को यह चेतावनी दी जाती है कि वह इस रूप को ही सच्चा न मानें क्योंकि अगर नीयत साफ़ नहीं है तो दयाल की बजाय काल का रूप प्रकट होकर उन्हें ग़लत रास्ते पर चला सकता है। तुम्हारा विश्वास इतना दृढ़ है कि तुम्हें हर समय मार्ग-दर्शन मिलेगा बशर्ते कि तुम सच्चे दिल से यह चाहो कि तुम्हारी इच्छा-पूर्ति में किसी दूसरे को हानि नहीं पहुँचे।

अब यह सवाल पैदा होता है कि हर एक सत्संगी को गुरु का रूप प्रकट क्यों नहीं होता और जिसको यह रूप प्रकट होता है क्या वह असाधारण व्यक्ति है? यहाँ पर यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जिसका जितना गुरु से प्यार है उसको उसका उतना ही लाभ पहुँचेगा। सिर्फ गुरु से नहीं बल्कि दुनियावी प्यार में भी रूप प्रकट हो जाता है बशर्ते कि प्यार सच्चा तथा गहरा हो। १९६२ में जब मैं महाराज जी के सम्पर्क में नहीं आया था मैं अमेरिका गया। वहाँ पर एक दिन मैं विश्वविद्यालय के छात्रों सहित पास के बड़े शहर लौसएंजलस में गया। उस दिन मैंने नीला

सूट पहना, लाल टाई लगाई और काले जूते पहने। मेरी पत्नी भाग्य भारत में जयपुर में थी। अमेरिका के समय के मुताबिक जब मैं ऐसे कपड़े पहन कर निकला जयपुर में उसी समय भाग्य को दरवाज़े पर दरवाज़ा खटकने की आवाज़ आई। वह कहती है कि "वह बाहर आई और उसने अन्दर से देखा कि लोहे के दरवाज़े के बाहर मैं वही कपड़े पहने खड़ा था"। वह इस बात को स्मरण करके कि मैं अमेरिका में था मेरे रूप को देखकर चकित हो गई और फिर वह रूप ओझल हो गया।

इस घटना को मैं इसलिए बता रहा हूँ कि जिसका जिससे प्रेम होता है और उसको देखने की प्रबल इच्छा होती है तो वह उसके बारे में जान सकता है। गुरु के प्रेम में तो अगाध श्रद्धा के कारण गुरु के बारे में भी ज्ञान हो जाता है। इस सच्चाई को समझने से श्रद्धा कम नहीं होती बल्कि और भी दृढ़ हो जाती है। अगर श्रद्धा और भक्ति से गुरु के शारीरिक और मानसिक रूप से लाभ उठाया जा सकता है तो उसे परमतत्त्व मानकर और सच्चिदानन्द का भण्डार मानकर, सर्वाधार मानकर मालिकेकुल मानकर कितना अधिक लाभ मिलेगा। साधारण लोगों को तो गुरु के मानसिक रूप का भी लाभ नहीं मिलता क्योंकि उनके विश्वास, उनकी श्रद्धा में कमी होती है। जिस सत्संगी को श्रद्धा के कारण गुरु के रूप से मार्गदर्शन मिलता है, उसको चाहिए कि वह गुरु के निजरूप का ध्यान करते हुए अपनी पहली श्रद्धा को इतना मज़बूत बनाये कि वह खुद ही गुरु का रूप हो जाये। परमदयाल जी महाराज ऐसे श्रद्धालु सत्संगियों को कई बार कहते थे कि तुम प्रसाद बना कर दूसरों को दो। ऐसा करने से उनकी नेकनीयति और विश्वास के कारण दूसरों को लाभ पहुँचने पर, प्रसाद

बनाने वाले सत्संगी की आन्तरिक उन्नति हो जाती है और वह मन के दायरे से निकल कर आत्मा और प्रकाश के दायरे से गुज़रता हुआ गुरु की कृपा से और शब्दाभ्यास से जीवन्मुक्ति प्राप्त कर सकता है और अन्त में विदेहमुक्ति पा कर परमधाम को जा सकता है। कहने का मतलब यह है कि गुरु के रूप की अनुभव की सीढ़ी से आगे बढ़ना है। उसी सीढ़ी पर बैठे रहने से जीवन का लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता। मेरा आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ रहेगा। तुम हर समय अपनी शंका को निवारण करने के लिए लिख सकती हो। तुम्हारा पति सन्तमत की तरफ आ जायेगा और तुम्हारे जैसा हो जायेगा लेकिन उसके परिवार के दूसरे लोगों पर अपना दृष्टिकोण थोपना नहीं चाहिए। समय आने पर उनका भी कल्याण हो जायेगा। सद्भावना रखो। तुम्हें तुम्हारे पति को, पति के परिवार को और पिता के परिवार को दिली आशीर्वाद और राधास्वामी !

तुम्हारा फ़कीरमय
मानव

सूचना

इस दशहरे के मौके पर हर वर्ष की भाँति सलवान पब्लिक स्कूल देहली में ३४ वाँ फ़कीर सन्त सम्मेलन २१ और २२ अक्टूबर को आयोजित हो रहा है। यह सन्त सम्मेलन मालिकेकुल पूर्णधनी परमसन्त परमदयाल हजूर पंडित फ़कीरचन्द जी महाराज ने ही जारी किया था। सभी सत्संगियों को इसमें सम्मिलित होकर लाभ उठाना चाहिए। परमसन्त हजूर मानव दयाल Dr. I.C. Sharma जी महाराज इसमें सम्मिलित होने के लिए २० अक्टूबर १९८५ को सायंकाल सलवान पब्लिक स्कूल में पहुँच जायेंगे।

इस सम्मेलन की अध्यक्षता परमसन्त शहनशाहे आलम हज़ूर पीरेमुगां साहिब करेंगे और अपने ८५ साल के लम्बे जीवन के अनुभवों के आधार पर यह बतायेंगे कि गृहस्थ में रहते हुए किस प्रकार व्यक्ति अपने कर्त्तव्य को निभाते हुए जीवन्मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

मालिकेकुल पूर्णधनी परमसन्त परमदयाल पंडित फ़कीरचन्द जी महाराज के उत्तराधिकारी परम सन्त हज़ूर मानव दयाल जी महाराज, आन्ध्र प्रदेश के सन्त आनन्द राव जी महाराज, हरियाणा के सिद्ध सन्त ताराचन्द जी महाराज अपने अमृत वचनों से सत्संगियों को लाभ पहुँचायेंगे। इनके अतिरिक्त आचार्य विजय नरेश नेगी और आचार्य प्रेमानन्द जी भी सत्संग देंगे। सत्संग का समय २१ अक्टूबर को प्रातःकाल ८-३० से १२ बजे तक और सांयकाल ३ बजे से ५-३० बजे तक और २२ तारीख को प्रातः ८-३० बजे से १२ बजे तक होगा।

इससे पहले १९ ता. शाम २० ता. सुबह को हज़ूर मानव दयाल जी महाराज मोदी नगर में अपने अमृत वचनों से सत्संगियों को लाभ पहुँचायेंगे।

जनरल सेक्रेटरी
मानवता मन्दिर

नोट :—(१) मेहनती आदमी दिन के वक्त दिल लगा कर काम करता है और रात में गहरी नींद का मज़ा लेता है। इसके दिन हँसी खुशी से कट जाते हैं।

(२) जो बेकार रहते हैं उनको वक्त काटना दूभर हो जाता है और जो काम में लगे रहते हैं उनको खबर भी नहीं होती कि वक्त कैसे आया और कैसे गया।

—दाता दयाल

महत्त्वपूर्ण सूचना

मानवता मन्दिर होशियारपुर की ओर से रविवार ३ नवम्बर १९८५ को सलवान पब्लिक स्कूल, राजेन्द्र नगर, देहली में ८-३० बजे प्रातः से १२ बजे तक हजूर परमसन्त मानव दयाल जी डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा को विदाई समारोह के उपलक्ष्य में सद्भावना प्रदर्शित की जायेगी। याद रहे कि हजूर मानव दयाल जी महाराज और भाग्य माता जी मानवता धर्म के प्रतिनिधि के रूप में अमेरिका में विश्व धर्म सम्मेलन में प्रवचन देने के लिये निमन्त्रित किये गये हैं। यह विश्व धर्म सम्मेलन में काफी, न्यूजरसी, संयुक्त राज्य, अमेरिका में १५ नवम्बर से २१ नवम्बर ८५ तक आयोजित किया जा रहा है। निमंत्रित करने वाली संस्था ने हजूर मानव दयाल जी तथा माता जी के आने-जाने का तथा अमेरिका में ठहरने का खर्चा दिया है। यह गौरव की बात है कि हजूर परम दयाल जो महाराज की कृपा से विश्व में मानवता धर्म की माँग हो रही है।

इस सम्मेलन के दौरान में अमेरिका निवासी सत्संगियों ने परमसन्त परम दयाल पं० फकीर चन्द जी महाराज की शताब्दी के उपलक्ष्य में इस वर्ष परम दयाल जी का जन्म सप्ताह अमेरिका में आयोजित किया है। इसलिये हजूर मानव दयाल जी महाराज उस सप्ताह के दौरान में अमेरिका में सत्संग देंगे।

सभी सत्संगियों को सूचित किया जाता है कि वे इस शुभ अवसर पर हजूर मानव दयाल जी को अपनी श्रद्धा प्रदान करने के लिये तथा उनका आशीर्वाद लेने के लिये इस अवसर से लाभ उठायें।

हजूर मानव दयाल जी प्रातःकाल को सत्संग देंगे। सत्संग के बाद सभी सत्संगियों के दोपहर के भोजन का प्रबन्ध रहेगा।

मानवता मन्दिर में अगला मासिक सत्संग 20-10-85

Regd. No. 26255/74 OCTOBER 10th 1985
MANAV MANDIR NWHSP—7

ADDRESS

Sh. Mukand Raddy
Vice President Radha Swami
Sat Sang Bhavan Pitlam
via Nizam Sagar Distt.
Nizamabad, A.p.

ıe : 2022

Form :

MANAVTA MANDIR
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR-146001

Shiv Dev Rao Press Manavta Mandir, Hoshiarpur (Pb.)

मानव मन्दिर